॥ श्रीमद्वीरायनमः ॥

भ्रमर भ्रमोच्छेदन

श्री मज्जैन धर्मोपदेशक श्रीमाधव मुनिजी महाराज विरचित

जिसको।

साधुमार्गी जैनउद्योतिनी सभा मानपाड़ा आगरा ने

हाफिज फैयाज़ुद्दीन प्रिन्टर के प्रबन्ध से

अबुलउलाई प्रेस आगरा में मुद्रित कराया

विक्रमार्क १९६७ वीर निर्वाण सं. २४३७

प्रथमावृति १०००) (मूल्य ३ पाई

श्रीमद्वीरायनमः ।

अमर भ्रमोच्छेदन ॥

॥ दोहा ॥

दिव शिव सुख दाई सदा, पुष्ठ कारण सम दिष्ट ।
सकल विघन उपशमन हित, नमूं पंच परमिष्ट ॥ २१

अमर दंडीजी आपने स्तवन संग्रहावली पृष्ट ३१ में लिखाहै कि (जैन धर्मका मुख किधर है इतने मात्र कीतो खवर भी नही है तोभी जैन धर्मके–उपदेष्टा वन वैठेहैं यह लिखना आपका असमंजस है क्योंकि जैनधर्म अमूर्ति पदार्थ है निकट भव्यातमा का निज गुण है, वत्थु सहावो धम्मो इति बचनात्' अतएव जैन धर्मके मुख कर तथा चरणादि

नहीं हैं जब जैन धर्म के मुख हैही नहीं तो कोई कैसे जाने कि मुख किधर है सूत्र उत्तराध्ययन के पच्चीस मे अ-ध्ययन में धर्मका अर्थात् धर्म शास्त्रों का मुखतो काश्यप अर्थात् श्री आदि नाथ फरमाया है, धम्माणा कासवो मुहं इति सूत्रम्' परंतु जैनधर्म का मुख अमुक दिशामें अर्थात् इधर है ऐसा तो जिनागमों में हमारे वांचने में नहींआया यादि आपके कल्पित प्रकीर्णादि कों में लिखाहो तथा जैसे तुमनें तुम्हारे मान्यदेव तथा गुरुकी मूर्ति पाषाणादि की यत्र तत्र पधरा रक्खी है ऐसें जैनधर्म की भी मूर्ति कहीं पधरारक्खी होय तो आपही कृपया लेख द्वारा प्रकट कीजिये कि उसका मुखतथा पृष्ठ भाग किस तरफ को है ॥

और आप लिखते हो कि (सम्यक्त्व) शल्योद्धार और यह हमारा ग्रंथ से भी थोडासा विचार करो कि तुमेरेमें मूढ़ता कितनी व्याप्त होगई है, ढंढी जी यह तुम्हारा लेख भ्रम मूलक है इस विषय में हम इतना ही लिखना समुचित

समझ तेहैं कि जो सम्यक्त्व शल्योद्धार नहिं नहिं सम्यक्त्व शल्योत्पादक तथा तुम्हारा रचित नेत्रांजन नहिं नहिं नेत्र धूलि का थोडा साभी सत्य जानकर विचार करेगा उस में अवश्य मूढता व्याप्त हो जायगी और आप लिखते हो पृष्ठ ३२ में कि (प्रथम देख आजीविका तुटने से विरतिमें आके लोंका शावनीयेने मांग मांग के खाया=इत्यादि ढंढी जी यह लेखभी आपका भ्रममूलकहै क्योंकि विपत्ति कालमें वेश वदल मांग मांग कर खाना तुम्हारा तथा तूम्हारे पूर्वजों का अनेक प्रमाणों से सावित है परन्तु तूम लोंका शाह आदि शिष्ट पुरुषों को कर्म वंधनार्थ व्यर्थ कलंकित करते हो अस्तु तुम्हारे पूर्व.जैनैं वेश वदल कर मांग मांग के खाया अरु तूम भी उन्हीं काही अनुकरण कररहे हो इस में अन्य ग्रथों का प्रमाण त्याग कर तुम्हारे ही रचित ग्रंथका प्रमाण देते हैं कांन उठाकर सुनों अरु आंख खोल कर पृष्ठ १८४ की पंक्ति २२ तथा २३ मी को पढो स्वयं

लिखते होकि (यह पीत वस्त्र कियाहूं सो आचार्योंकी सम्मती से ही किया गयाहै) इस तुम्हारे लेख से पाठक गण तथा आपभी बुध्दि रखते हो तो विचार सकते हो कि विपरित काल में ही भिक्षा सुलभ मिल जाने के अर्थ वेशपरि वर्त्तन किया वरना क्या जरूरत थी झूठा दूषण कोन लगा ताहै सिवाय अनर्गल मिथ्यावादियों के आप इस समाधा को सुनकर चमकिये नहीं क्यों कि अभी तो तुम्हारे पोल के ढोल को बहुत खोलेंगे ॥ दंडी जी आप फिर यह लिखते हो कि (तीर्थं कर भगवान के वैरी हो के पित्तर भूत यक्षादिकों की प्रतिमा को पुजाने वाले नीच अधम कहे जावेंगे कि तीर्थं करों के भक्त उसका थोडा सा विचार करो) सो दंडी जी प्रेम पूर्वक कथन है कि यह लेख तुम्हारी अनभिज्ञता कोही प्रकट करता है क्योंकि (देखो पंचम काल कलू की महिमा अजब निराली है ॥ टेर ॥ तीन-खंड को नायक ताको रूप वनावें जाती है। पामर

नीच अधम जन आगैं नाचैं दे दे ताली हैं ॥ १ ॥ दे० ॥ पद्मापति कौ रूप धारिकैं मांगैं फेरैं थाली है । वनैं मात पितु जिन जी के ये बात अचंभे वाली है ॥ २ ॥ दे० ॥ जंबू रूप वना के नाचैं कैसी पडी प्रणाली है ॥ इत्यादि पद्यम्) उक्त पद्य में तीर्थ करों को पूजना तथा पुजाने वाले का जिकर ही नहीं है आपनैं व्यर्थ अढाई पंक्ति लिख कर कागद काला किया है अव हमारे लेख रूप अंजन को हृदय नेत्रों में आंज कर पद्य के अर्थ को देखो (तीन खंड का नायक जो श्री कृष्ण तिसका जाली रूप वना कर पामर नीच अधम पुरुषों के समीप ताली दे दे कर नाचते हैं रास लीला करते हैं पद्मा नाम लक्ष्मी तिसका पति कौन श्री कृष्ण जिसका रूप धार थाली फेर कर मांगते हैं तथा जिनेन्द्र देव के माता पिता वनते हैं जम्बू स्वामी का रूप धारण कर नाटक करते हैं । यह पंचम कालकी अजव भरी गजव महिमा हैं इत्यादि पंचम

काल का माहात्म्य पद्य में दरसाया है पद्य के भावार्थ की तो आपको गंधभी नहीं आई है थोडा सा परिश्रम कर काव्यों का अर्थ करना गुरु मुखसें सीखो जैसा उक्त पद्यका अर्थ आपको विपरीत भासा है तैसें हीं आपनें जिनागमोंके अर्थ विपरीत कर करके यह थोथा पोथा लिख धरा है विशेष क्या लिखें लज्जा वानों को इसारा हीकाफी है ॥ फिर आप पृष्ठ ३३ मी में लिखते हो कि (जिन पूजन छुडवायके पित्तरादिक पुजाते हैं उनको मणि काच की खबर नहींहै कि हमको) यह लेख भी आपकी बुद्धिका परिचय देता है क्योंकि पद्य में खास तुम्हा ही नाम नहीं है किंतु जिन को जड अरु चेतन की पहिचान नहीं है तिन के प्रति सदुपदेश है फिर तुम क्यों व्यर्थ पुकारते हो इस विषय को विशेष नहिं वढा कर इतना ही लिखना आपके प्रति सार्थक समझ तेहैं कि जो मानभद्र क्षेत्र पाल षोडष मात्रि का तथा पित्तर अर्थात दादाजी को पुजाते व

पूजते हैं उनहीं शठों को मणि और कांचकी खबर नहीं है ॥ ढंडी जी आप फिर लिखते हो पृष्ठ ३३ मी में कि (प्रतिष्ठादिक कार्य में आह्हान और विसर्जन इंद्रादिक देवताओं का किया जाता है इस दूढक को खबर नहीं होने से भगवान का लिख मारा है गुरु विना ज्ञान कहां से होगा] ढंडीजी यह लेखभी तुम्हारी विद्वत्ता का आदर्श है क्योंकि जो तीर्थंकर भगवान का आन्हान अरु विसर्जन करते हैं तिन के ही गति काव्य में कथन है आपने तो व्यर्थ पंडित मानी पणा प्रकट किया है क्योंकि आपको यह भी तो मालुम नहीं हैं कि जैनी नाम धराने वाले ऐसे भी हैं कि जो मोक्ष प्राप्त तीर्थं करोंका अब भी पूजन के समय नित्य आन्हानादि करतेहैं देखो ध्यान लगाकर हमारे प्रमाण रूप भानुको "मुम्बईस्थान श्री जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय संवत् वीर निर्वाण २४३३ का छपाया भाषा पूजा संग्रह पृष्ठ ८४ की पंक्ति ४।५।६। ॐ ह्रींश्री

वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्र अवतर अवतर संघोषट॥ॐ ह्रीं श्रीं वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः॥ ॐ ह्रीं श्रीं वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्रम मसान्निहि तो भव भव वषट् यह तो आव्हान का ममाणा अब विसर्जन का ममाणा देखिये उक्त ही पुस्तक के पत्र ५८ की मष्ठ पहिली की पंक्ति २ (पूर्णार्घ्य के बाद विसर्जन करना चाहिये] वस अब इस लेख को देख कुछ लज्जा धारण करो मिथ्या लेख का माय श्चित्त करो शिरपर सु गुरु धारण करो तासे ज्ञान होय॥ अमर ढूंढी जी पुनः तुम मष्ठ ३२ में लिखते होकि] यह ढूंढक हमको उन्मत्त और अज्ञान ठह राता है परंतु पहिले से ख्याल करोकि ढूंढनी पार्वती जी यक्षादिक पित्तरादिक देवांकी मूर्ति यां की पूजा करानेको तत्पर हुई है उस मूर्तियां को कौनसा चेतन पनाहै] सो ढूंढीजी साहेब यह लेख भी आपकी अज्ञता जाहिर करने

में कुछ कसर नहीं रखता है क्योंकि आपने हमारे लेखका तात्पर्य ही नहीं समझा हमारा कथन तो उन अभिनिवेश मिथ्या त्वी उन्मत्त अज्ञों सेहै कि जो जव गोधूम तथा धान्यादिमें चेतन पणा नहि मानते हैं तो यदि आप भी अचित मानते हैं तो आपसे भी कथन है और जो आप कुछ भी पण्डित्य ता रखते हो तो जिनागमों का प्रमाण देकर सिद्ध कीजिये आपके प्रकीर्णादिक का प्रमाण नहीं माना जायगा वजह कपोल कल्पित है इससें ॥ तथा श्री मती सती पार्वती जी को आप व्यर्थ मिथ्या दूषण लगाते हो उक्त सती जी कव किस क्षेत्र में किस यज्ञादिक की ... का पूजन कराने को तत्पर हुई सो प्रमाण सहित प्रकट कीजिये वरनां मिथ्या भाषी पणा प्रक

यक्षादिकौंकी तरह पुष्पादिका गंधादिग्रहण नहीं करते हैं फिर क्यों भूपभक्ति में हिंसा करते हो जरा गोर तो करो पर भव काभी डर रक्खो ॥ पुनः पृष्ठ ३४ मी में आपने मिथ्यात्व रूप भंगकी तरंग में अडंग की वंडग लेखिनी चलाई है कि [जबसे तीर्थंकर देवकी मूर्त्तियां की और जैन सिद्धान्तों की अवज्ञा करके पित्तरादिक देवताओं की मूर्तियां के भक्त बनने को तत्पर हुए हो तबसेही तुमेरा समकित तो नष्ट ही होगया है तुम समकित धारी बनते हो किस प्रकार से] सो ढूंढोजी यह लेख तुम्हारी कितनी मूर्खता दरसा ताहै इसे तो पाठक तक भी जान गयेहैं अस्तु परंतु हमतो आपसे यह पूछते हैं कि आप यक्षादिक पितरादिक ही लिखना जानतेहो या कुछ औरभी जानते हो क्योंकि आपने प्रत्येक पत्रमें यक्षादिकों के ही चरण का शरण ग्रहण कियाहै यहतो आपलिख कर प्रकट करोकि यक्ष मानभद्र तथा पित्तर दादाजी आदि

को कौन मूढ मानते व पुजाते हैं हमतो स्वप्नान्तर में भी इनका मानना तथा पूजना पुजाना नहीं चाहते हैं और शृद्धान भी येही रखते हैं कि जो जीव मूर्ति पूजन को नहीं छोडेगा उसको कदापि सम्यक्त्व नहीं आसकती तीर्थंकर और तीर्थंकरोक्त सिद्धान्तों कोतो हम शिरसा वंदनीय मानते हैं परंतु पाषाणादिकी मूर्तियोंको नहीं॥ जो पुरुष पाषाणादि के खिलोनों से खेलते हैं और खेलमें व्यर्थ वे तादाद हिंसा करते हैं सोही बाल हैं॥ शान्तिः १ शान्तिः १ शान्तिः १ ॥

उत्तर दाता-

श्री मज्जैन धर्मोपदेष्टा
माधव मुनि.

* स्तवन *

जिन मार्ग में साफ़ मना है तोड़ना तुड़ाना फूलों का।
आवशक सूत्र में कहां लिखा मूरत पै चढ़ाना फूलोंका ॥
टेर॥जीव हिंसा होती है पेड़ से तोड़ कर लाना फूलोंका।
या होता है धर्म मंदिर अंदर ले जाना फूलों का ॥
आपही फ़रमावो कैसा है माला बनाना फूलों का।
पाप होवे या पुन्य कहो ये बेचना बिकाना फूलों का ॥
लो वो कौनसा सूत्रहै जिसमें लिखा सताना फूलोंका॥आ. १॥
क्या आपके मत में धर्म लिखा हिंसा करवाना फूलों का।
इससे तो प्रगट होता है जीवन जाना फूलों का।
हमने इकन्द्री जीवों में से जीव पैचाना फूलों का ॥
हांन इकन्द्री जीवों की कर क्या हार गुथाना फूलोंका।
मैं जानता पाप होता है हाथों से दबाना फूलों का ॥ २ ॥
मत फूलों का पलंग करो कर ताना बाना फूलों का।
इसमें भी क्या धर्म मिलै कर धोना धुलाना फूलों का ॥
मूरत के आगे जो करवाते आप बिछौना फूलों का।
जैन सासतर में कहां लिखा है कत्ल कराना फूलोंका ॥
बत्तीस सूत्रोंमें जहां लिखा हो हमें दिखाना फूलोंका।२॥

कौनसे ग्रन्थ में लिखा तोड़ना पाठ बताना फूलों का ।
चुन चुन कलियों को फिर मूरत पे जमाना फूलों का ॥
इसमें भी कुछ धर्म समझते पंखा हिलाना फूलों का ।
और बाग के माली से कह तुड़ा मंगाना फूलों का ॥
दम्मन बेग ने कहा हाल सच्चा दरसाना फूलों का॥८॥

इति ।
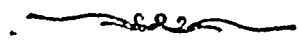
स्तवन तरङ्गिणी प्रथम भाग ···· -) ················ डांक)॥

* स्तवन „ दूसरा भाग -)॥ ······················)॥

श्रीमत्केशी चरित्र ·········· ····· -) ····· ················)॥

जैनधर्म के नियम ············ ···)॥ ····· ················)॥

अमर भ्रमोच्छेदन ·············· । ····· ········ · ···)॥

चौवीसी पद ················ -) ··· ··· ···· ···)॥

* यह किताब हर एक सज्जनको देखनी चाहिये और सोचना चाहिये कि अमर दंडी जी ने पदों के अर्थ का कैसा अनर्थ किया है ॥

पता—पुस्तकाध्यक्ष

साधुमार्गी जैन उद्योतिनी सभा

ठिकाना. मानपाडा

पोष्ट. आगरा,

दिगंबर जैन ग्रंथमाला नं. ११

ॐ

कलियुगकी कुलदेवी.

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापडीआ

ऑ. संपादक. "दिगंबर जैन"—सुरत.

प्रथमावृत्ति प्रत १००००

वीर सं २४५८ विक्र सं १९८९

[illegible]

मूल्य—सदुपयोग

ॐ

श्री "श्राविकाश्रम"—मुंबाई.

अपने बहुतसे भाईओं लग्नादि शुभ प्रसंगोमें वेश्या नृत्य और श्रृंगारिक गायनों एक दुसरेकी देखादेखीसे अपने कुटुंबीओं समक्ष करवाते है, जीसकी कैसी बुरी असर अपनी कन्याओं पर पड जाती है, वह आपकुं इस पुस्तक पढनेसेही मालुम होगा। अब बहुत समयसे हुये हुवे इस अपराधका प्रायश्चित compansation करनेका यदि कोई कर्तव्य हो, तो वह यह ही है की इस अविनययुक्त रिवाजको सदैवके लिये बंध करके लग्नादि शुभौसरोंके निमित्त कुछ न कुछ द्रव्य इस 'श्राविकाश्रम' मे भेजकर अपने मनुष्य जन्मको सफळ करके श्राविकाओंको ज्ञान लेनेके लिये उत्तेजित किजीये। विज्ञेषु किमधिकम्!

धर्म सेविकाः—मगनबाई, मंत्रीणी, "श्राविकाश्रम",

जुबीलीबाग, तारदेव, नं. ७, मुंबाई BOMBAY

भूमिका.

प्रिय बंधुवों ! जाति संबंधी प्रत्येक सभाओंमे ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने और वेश्यानृत्य रोकनेके लिये प्रस्ताव पास हुवा करते है, परंतु जहांतक किसी विषयका पूरा लाभ व हानि प्रदर्शित न हो जाय, वहांतक प्रस्ताव अमलमें आते नहि है। उपदेश द्वारा हानि लाभका अनुभव कराना भव्य जीवोंको सुधरनेके लिये बाह्य कारण है, इसी विचारसे दो वर्ष पहिले मैंने "कलियुगनी कुलदेवी" नामकी पुस्तककी २००० हजार प्रत गुजराती भाषामें प्रकट की थी, जो जन समाजमे बहुत आदरणीय हुई और बहुतसें महाशयोंकी तर्फसें मुझकुं यह सूचना मिली, की जयपुर, लखनौ, कानपुर, दिल्ही, इंदोर आदि उत्तरके सभी मुल्कोंमें वेश्यानृत्यका बहुत प्रचार होनेसे यदि इस पुस्तकका हिंदी अनुवाद प्रकट किया जाय, तो जनसमाजकुं बहुत लाभ हो सके, इस लिये मैंने इस पुस्तकका हिंदी अनुवाद नरसिंहपुर (सी.पी.) निवासी मास्टर दीपचंदजी (परवार) उपदेशक द्वारा तैयार कराकर यह सोचा कि, यदि इस पुस्तककी बहुतसी प्रतों छपवा कर केवल मुफ्तही बांटी जाय, तो बहुत लाभ हो सके, इसी हेतुसे इसकी १०००० प्रतों छपवाकर - के लिये मैंने "दिगंबर जैन" मासिक पत्रमें भी -

पांच २ रुपये प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना की थी, जीससें निम्न लिखित महाशयोंकी तर्फसें निम्न प्रकारकी सहायता मिली है—

१०) श्रीमान दानवीर शेठ माणेकचंद हीराचंदजी जे. पी मुंबाई.
१०) शेठ रोडमलजी मेघराज, सुसारी
१०) शेठ नाथा रंगजी गांधी, आकलुज और मुंबाई
७) शेठ हरीभाई देवकरण, सोलापुर
१०) दिगंबर जैन पुस्तकालय, सुरत.
५) श्रीयुत हरजीवनभाई रायचंद, आमोद (भरुच)
५) शेठ हीराचंद अमीचंद शाह, सोलापुर.
५) श्रीयुत नगीनदास मोतीचंदजी, मांडवी (सुरत)
५) हजारीलालजी मंत्री, दिगंबर जैन प्रांतिक सभा, माळवा.
५) परीख लल्लुभाई प्रेमानंददास एल सी ई. मुंबाई.
५) शेठ गुलाबचंद हीरालालजी, धुलीआ (खानदेश)
५) शेठ दगडुसा सेवकदासजी, सामोडा (खानदेश)
५) दिगंबर जैन पंच, दोहद
५) शेठ प्रेमजी सवजी नखारीआ, डुंगरपुर (रजपुताना)
५) श्रीयूत जयकुमार देवीदास चवरे, वी.ए.बी. एल, अकोला.
५) 'भारत जैन महा-मंडळ', ललितपुर.
५) शेठ रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर.
५) श्रीमती मगनबाई, मंत्रीणी, श्राविकाश्रम, मुंबाई
५) श्रीयूत भूरेलालजीकी स्त्री जनकाबाई, जतारा (झांसी)!
५) जैन शिक्षा प्रचारक समीति, जयपुर.
५) जैन तत्व प्रकाशीनि सभा, इटावा.

इस प्रकार रु. १२७)की सहायता प्राप्त होनेसे इस पुस्तककी १०००० प्रतों जनसमाजमें केवळ मुफ्त बांटनेके लिये प्रकट की है। इसमें पहिलेसे कुछ विस्तार सहित विवेचना की गइ है। भाषाभी सरल है, इस लिये अपने पाठकोंका चित्त इस और आकर्षित करता हुं, कि आप लोग कृपया स्वयं पढकर लाभ उठावें और अपनी सन्तानको वंचा व सुनाकर उन्हें कुमार्गसे रोकें। अपने इष्ट मित्रोंकोंभी भले प्रकार सुनाकर सुमार्गमें लावें। इसमें कदाचित् कहीं २ कठिन शब्दभी होंगे, परंतु वे क्वीनाइन-के तरहसे ज्वरनाशकही समझना चाहिये। इसमें किसी प्रकार कषायोंकी पुष्टता नहीं कि गइ है। सभावोंके मुखिया, जातिके अगुवा श्रीमान और धीमानोंसे निवेदन है, कि इस जातिको अब घोर अंधकार अनाचारसे बचाकर सदाचारमें लगावो और इस पुस्तकका बहुत कुछ प्रचार कीजीये। मेरी मातृभाषा गुज-राती होनेसे इस पुस्तक प्रकाशनमें कहीं २ स्थानों पर अशुद्धि रह गइ होंगी, जीस लिये क्षमा प्रार्थी हुं। आशा है कि यह पुस्तक सबको हितकर होगी और ब्रह्मचर्यकी वृद्धिमें सहायक होगी और मैं इस तुच्छ परिश्रमको सुफल कर आगामीमें इन्हा-

॥ श्री ॥

उन्नति २ सब चहैं, उन्नति कैसे होय।

ज्ञान दीप विन उन्नति, देखी सुनी न कोय ॥

मान्यवर बंधुवर्ग! यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि धार्मिक व लौकिक ज्ञानके प्रचार विना देश व जातिकी उन्नति नहि हो सकती और सरकारी स्कुलोंमें धार्मिक व देशोपयोगी शिक्षाके अभावसे और जातिय पाठशालाओंमें लौकिक ज्ञान न होने आदी कारणोंको लेकर "भारतवर्षिय जैन शिक्षा प्रचारक समीति" नामक संस्था जयपुरमे स्थापित की गई है, जिस्के आधिन वर्धमान जैन विद्यालय, कन्या पाठशालाएँ और छात्राश्रमभी है, जीस्का वार्षिक व्यय अनुमान रु. १२०००) के है। सज्जनवृंद! सर्व कार्योंके चलनेमें पारस्परिक योग ही मुख्य है इसलिये इस धर्मोन्नतिके कार्यमे उदारता प्रकट करके कुछ न कुछ द्रव्य भेजनेकी कृपा कीजीये। धर्म्मीजन! धन दे तनको राखीए, तन दे रखिए लाज। तन दे, धन दे, लाज दे; एक धर्म्मके काज॥ इत्यलम्॥

प्रार्थी:-मंत्री, भारतवर्षीय जैन शिक्षा प्रचारक समीति

जयपुर-JAIPUR.

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

कलियुगकी कुलदेवी.

प्रिय बंधुवो ! आप लोगों को यह बात भले प्रकार विदित है, कि प्रायः सम्पूर्ण ज्ञातियों में प्रति समय कोई लग्न आदि शुभ कार्यों के प्रसंग से अपने अपने इष्ट अर्थात् कुलदेवता आदि की पूजा प्रभावनादि होना आवश्यक है और प्रायः हुवा भी करती है, सो ठीकही है, परंतु आज अत्यन्त खेद के साथ कहना पडता है कि इस पंचमकाल कराल के कुटिल प्रभावसे प्रायः प्रत्येक ज्ञाति के मुखिया श्रीमानों और विषय लम्पटी स्पर्शेंद्रिय के वशीभूत हुवे निर्लज्ज व्यभिचारी पुरुषोंने उक्त प्रथा (इष्ट देव पूजा प्रभावनादि) तो बिल्कुलही काढदी, यहां तककि जहां कहीं आर्य पद्धति से लग्न, उपनयन, विद्यारंभ आदि कार्य किये जाते है, तो वहां अनुमोदन करनाभी दूर रहे, परंतु उल्टे विघ्न देनेवाले बन जाते है, ऐसे सज्जनों की निंदा करने

old fool (पुराने मूर्ख) बगला भगत आदि कहकर असकार करते है सो तो ठीकही है। परमार्थ से देखा जावे तो "नीचों के द्वारा की हुई सज्जनों की निंदा" निंदा नहीं है, किन्तु स्तुति ही है, क्योंकि संसार में यादि ऐसे दुर्जन न होते, तो सज्जनोंकी पहिचान भी होना कठिन होती. अस्तु. यहां कहने का तात्पर्य यह है कि निंदक लोगोंका स्वाभाव ही ऐसा होता है कि उन्हें अपने स्वतः के स्थूल दोष भी दृष्टि नहीं पडते, अर्थात् स्वयं आपको वे सज्जनोत्तम ही समझते है और दूसरों के सूक्ष्म भी दोष विद्यमान वा अविद्यमान भी दृष्टिगोचर होते है.

सद्ग्रहस्थों ! ऐसेही लोगोनें इस समयमें एक नवीन कुलदेवी, जिसे "कलियुगकी कुलदेवी" के नामसे कहना चाहिये, ढुंढ निकाली है. बस, जिस समय कोईभी शुभौसर प्राप्त हुवा अथवा योंही चार गपोडबाज कूल बोरु इकत्र हुवे, कि फिर क्या है? तुरंतही उमंगमे आ कर इस "वित्तविनाशक कुलदेवी"का आव्हानन और पूजनारंभ हुवा. कदाचित् पुराने भक्तोंको कुछ पूजनकी सामग्री इकत्र करने में कभी कुछ देरी हो जाय, परंतु नवीन कलियुगी भक्तोंको तो केवळ पेटीका तालाही खोलकर थैली निकालना पडता है, इस

लिये भला उन्हें देरी होना कैसे संभव हो सक्ता है ?
उनका काम तो बराबर हाकिम पहले आरंभ हो जाता है.
कदाचित् कर्मवश शरीर चाहे जैसा असाध्य रोग आ गया
होय, खाने पीने, उठने बैठनेकी शक्ति न हो, तोभी उसके
उपासकोंको बिछौने पर किंचित्‌भी चैन नहीं पडती, क्योंकि
उसका आकर्षण बडा प्रबल है । ज्योंही तबल्हेकी थाप, सारं-
गीका सुर, मंजीराकी टंकोर, घुंघरूकी झनकार, पैरोंकी ठनकार
और कोकिल रागकी धाग (लगाप) कान पर आई, कि तुरंत
ही चेतन शक्ति आ जाती है । बिछौने परसेही उछल कूद
करने लग जाता है । यदि उठ नहीं सक्ता है, तोभी मनही
मन बहुत दिलगीर होता है । लोगोंमें प्रकट करता है की
क्या करूं ? आज मुझमें खडे होनेकीभी शक्ति नहीं रही !
लाचार हूं. नहीं, गया महफिल सूना हो जाता ? ईश्वर ! मेरा
पलंगही वहां रख दो: और नहीं तो दर्शनहीं करके अपने
मनको शांत करूंगा । इस तरह महफिलमें प्रवेश करके जब
उस नर्तकी गुलबदनीके सुंदर कपोलों पर (जो कि सुन्दरा
(जिन्हें रूपांग वेश्यायें प्रायः रोगन लगाकर चमक दमक बना
लेती हैं) पडी, कि मस्त हो गया और उस परकी नैन-
बान चला कि लगी मुर्दे कैसी गर्दन हिलने, उस

तो चाहे " लोक जावो, लाज जावो और जावो धन; पुत्र स्त्री की राम जाने, खुशी रहे मन." और तो क्या ? कदाचित् उसका ओढ़नीका छोड (पल्ला) हवामें उड गया, तो घोर वेदनाकाभी किंचित् विस्मरण हो जाता है. क्या कभी पुरात्मा भक्तभी अपने इष्ट कुलदेवोंकी ऐसे आराधना करते है ? नहीं. यदि करते तो " जैसी भक्ति हरामसे, ऐसी हरिसे होय; चला जाय वैकुंठमें, पल्ला न पकडे कोय." की कहावत अनुसार अवश्य ही कर्मोंसे छूट जाते. यथार्थ में यह कलियुगी देवी और उसके भक्त दोनोंही विचित्र चमत्कारी है। प्रिय वांचको ! आप बडे विस्मयमें पडे होंगे कि ऐसी कौन चमत्कारी कुलदेवी है, वह कहां रहती है और उसके भक्त कौन ? तो लीजिये, बताये देता हुं। वह हिन्दुस्थानमें सबही अच्छे अच्छे बडे बडे शहरोंमें (जहां पर धनी मानी सेठ साहूकार जमीनदार व्यापारी रहते है) रहती है और वेही उसके परम भक्त हैं, कारण वह गरीबों पर कभी प्रसन्न नहीं होती. कारण कि उसका भक्ष्य रुपया ज़र जेवर है. सो गरीबोंके पास होता नहीं है। एक विचित्रता औरभी है, कि जब वह किसी धनी पर अत्यन्त प्रसन्न हो जाती है, द्रव्य हरण करनेके सिवाय उसका बल-

छीन कर सदाके लिये नपुंसक बनाकर भिक्षुककी

दशायें उपदंश (गर्मी) आदिसे भूषितकर नग्रमें भ्रमण कराती है. यह एक नहीं, परंतु बहुत है. इसने इस देशके बडे घरानोंमें प्रवेश कर उनको पायमाल कर दिया है। कितनोंका धन हरण किया, कितनोंको रोगी बनाकर वैद्यों और डाक्टरोंके घर गुलजार किये, कितनोंको स्त्री पुत्रोंसे वविच्छिन कर काले पानी भेज दिया, किसीको दारू पिलाई, तो किसीको मांस खिलाया, किसीसे चोरी कराकर राज्यदंड दिलाया. गाली खिलाना तो मुहूर्त पर प्रारंभ हो जाता है, और तो क्या, बडे बडे राजा रजवाडोंको भी अपनी मुट्ठीमें दाब रक्खा है. ये सुभट जो शत्रुकी सेन्याके तीक्ष्ण वाणोंको खाकर भी जीत का डंका बजाते थे, उनको भी बातकी बातमें केवल दृष्टिकटाक्ष में वशीभूत कर डालती है. अनेक स्त्रियोंको सुहागन होनेपर भी विधवापन भोगवाना इसीका प्रभाव है. इसीके कारण अनेक मातापिताओंको पुत्रवान होते हुवे अपने वंध्याही समझ कर संतोष करना पडता है। यह दूसरे पाप जुलानी और भगवानको दूर हटा देती है। भारतवर्ष जैसे विद्वान और श्रीमानका इसप्रकार इसी फंदेमें ही हो सकता है. विद्या, क्षमा, शील, संतोष, धर्म आदिको भी इससे धोके पडनी है. कुमार्गवासियोंकी बदर मधु लोकमें वेश्या, गणिका, कंचनी

पात्तर, किसबन, वारांगना, नायका, रंडी, पतुरिया आदि नामोंसे विख्यात् है। इसको नामके पीछे जान शब्द भूषित करता है और आगे 'बीबी' से सुसोभित होता है. भक्तोंकी तो लीला अपार है। वे तो जो अलंकार न लगावें, सोही थोड़े हैं। रंगीली, छबीली, मंगलामुखी, मोस्टीदयूट, सर्कार, हुजूर, प्राणवल्लभा अदि अनेक उपमावों सहित पुकारते है !!

यही उक्त कही हुई कुलदेवी है. इसके भक्त हमेशा अकल के दुशमन श्रीमानही होते है और कभी गरीबको देखादेखी भक्ति हो गई, तो फिर लंगोटी भी बचना कठिन है। इस के भक्तजन इसकी नाराजी किंचित् भी सहन कर सक्ते नही है। वे तो अपने प्राण न्योछावर करके भी उसे प्रसन्न रखनेको तैयार रहते हैं। यह जैसा नाच नचावे वैसाही कठपुतलीकी तरह नाचते रहते है। किंचित् भी इधर उधर हो नहीं सक्ते है। बडा आश्चर्य है की सिंह समान बलाधि कारी पुरुष भी इस के चुंगलमें फंसकर हाथका खिलौना बन जाता है। क्या जाने ? जो, लोकमें किसीका वचन भी सहनेको समर्थ नहीं, सो उस कुलनाशनीके जूतोंकी आशा करते है। लोक देखते देखतेभी अंधा होकर जालमे फस कर खाता है, पछ्ताता भी है, परंतु भूल सुधारता नहीं है।

एमय लोकमें दुःखोंको प्राप्त होता है। सुखका तो नामही
सुनता है, परंतु अनुभव करनेके मार्गसे तो पराङ्मुख है।
अनुभव कैसे होवे? इसके अनेक दृष्टांत लोकमें दृष्टिगोचर हैं।

देखो! विषयपुरमें एक सदानंद नाम सेठ रहता था। जब उसके
घर पुत्रीजन्मका उत्सव आया, तो यह समाचार सुनकर दूर
दूरसे भाट, भांड, भंडुवे आदिका आगमन होने लगा और
इसी अवसर एक पंडितजी अपने चेले सहित विहार करते
धर्मोपदेश देते कथा कीर्तन करते हुवे दैवयोगसे आ निकले
और येनकेन प्रकारेण कह सुनकर पुराने टूटेसे घरमें जहां दुर्ग-
न्धित लोकभी डांस मच्छर किल्लोलें करते थे, कभी कभी सूर्य-
देव अपनी विस्तृत किरणें अंदर डाल देते थे, कभी चंद्रमाकी
चांदनीभी दरवाजे रहते अन्दर प्रकाश कर देती थी, परन्तु
जो नाम मात्रा था, बरसादमें जमीन भीजने और पानी टप
कनेके सिवाय कुछ नहिं होता था। बहुत होता तो पावसके
समय महाराज पंडित भोजन करते हुवे इधर उधरकी पानी
लिये रहना पाते या अंतरान्तर भोजन छोड़ देते, परंतु यहां
[illegible] कथा आरंभ हो गई। इसी हुवे बिना और [illegible]
[illegible] किसी भी [illegible] अनुचित है; संतोष [illegible]

उपमायोग्य गृहमें वास करते थे और कथा किया करते थे। श्रोता भी कभी कभी सफेद बालवाले पुरुष हाथमें लकडी लिये हुवे कमरपर हाथ रख खांसते खंखारते हुवे यमराजके डरसे सूखे हुवे दुर्बल शरीर सहित रास्तेमें दो चार ठिकाने बैठकर कठिनतासे टटोलते हुवे, महाराजजी प्रणाम, दण्डोत पालागन कंह कर ज्योंहीं बैठने लगते कि पवनके धकेसे गिर जाते, ऐसे आ जाते थे। पंडितजी भी चिरंजीव रहो, जय हो, आशीर्वाद आदि कहकर स्वागत कर देते थे। कभी कभी ऐसाभी होताथा, की जो लडके घरमें शैतान होते और कुछ उपद्रव करते, उन्हेंही कथामें भेज कर भार टाल दिया जाता था। सो वे अज्ञान बालक कथामें आकर महाराजको विघारुप हो जाते थे। निदान इसी प्रकार एक मास पूरा हुवा। उधर महाराजने कथाका अन्त पाया। यहां श्रोतावोंका भार उतर गया। सेठ लोगोंको फिकर पडी। लाचार हो, सब पंचोंसे चंदा होकर महाराज और उनके शिष्यरामको मिलाकर एक रुपया रोजका महिनताना परवश देना निश्चय होगया, किन्तु लग्नवाले शठानन्दजी तो नटही गये! इधर शठानन्दके घर बरात (जान) आनेकी तैयारी है। जहां मंगल गीत अश्लील शब्दोंमें (गालियां) हो रहे है,

जिनको सुनकर विधवाएं भी पुत्रकी आशा करने लगती हैं, बालक बालिकाएं भी वधू और वरकी चाह करते हैं। नगर स्त्रियें तो इस वक्त अवसर पाकर भर मैदान अपने दिलोंका हौसला निकालकर गुंडोंको रिझानेके लिये थोटा मुंह ढाककर बाप भाई बेटे आदिके सन्मुखही अपने कुलीनी होनेका सर्टिफिकेट अपने मुंहसे बांचकर सुना रही हैं!! निर्लज्ज बाप भाई बेटेभी अपनी मा बहिन बेटियोंके द्वारा इनके गन्दे सुनकर कामान्ध हुवे अनेक प्रकार हंसी ठठोली करने लगे, गुलाल, बतासे, आदि फेंक कर अपने मनकी तरंगे जाहिर कर रहे हैं! बड़ी धूमधाम हो रही है। बाजे गाजे बज रहे हैं। इतनेमें तार आया- रूपेलाल लिखते हैं कि तीन बजे मेल ट्रेन से फर्स्ट क्लास गाड़ी में अकेली जान आती है सो उतार कर सब व्यवस्था योग्य करना। जान भी आपके ९ बजे आवेगी। विशेष कामकाज तारद्वारा सूचित करना। बस! सामने बजार भवानन्दने चार घोड़ेकी बग्घी मंगवाकर अपने ज्येष्ठपुत्र धनमालको तुरंत ट्रेन देखने भेजा। इधर आपने बाजारके बीच एक दो मंजिला हवेली खाली करवाकर धामकी कायदे ऐसी सजाई, मानो स्वर्गका विमान ही है। एक एक करके सारी घेरकर आ गई। धनमाल अपनी दूरबीन

थे ही ! तुरंत हाथ मिला उक्त बग्धीपर सवार हो वायुकी तरह उक्त सुसज्जित मकान में पहुंच गये। दर्शकों का तो कुछ समाचारही निराला था। किसीके गिरनेसे घुटना छिल गये, किसी सिर टकरा गया, कोई पगोंके नीचे दब गया, तौभी अमंगलामुखी देखनेको न मिली. खैर। शामुको महफिल में तो देखेंगे, कहकर संतोष करते थे. बीबी को उतारा हुवा और सब खानपानकी व्यवस्था करके उधर जान (बरात) ली गई और जब वरराज मंडफ में पधारे, तो मंडफ खचाखच भर गया। उक्त अलबेली जान तो पोलिस के पहरे द्वाराही वरराजके सन्मुख पहुंच गई। इस समय वर तो आपको इन्द्रराजही समझते, परंतु दर्शन भी कभी कभी बृह्माके पंच मुख धारण करने इच्छुक थे। जिनको सूरत देखनेको नहीं मिली, वे तो मानो अपने जीवनका सार्थकपना ही खो बैठे! निदान प्रथम ही मुजरा शुरु हुवा, कि सेठ लोगों के पाकटों पर हाथ गया, तो उधर गणिकाजु कब कम होशयार है ? तुरंत गर्दन मटकाकर कमरको वल देती हुई खडी हो गई और एक ही फेरीमें तीनसौ कल्दार इकत्र कर लिये। गिन्नेवाले कौन थे ? उस वख्त अपने कथावाले पंडितजी आ कर तुरंत बोल उठे—" फूटी आंख विवेक की,

कहा करे जगदीश:। कंचनिशाको तीनसौ, मनीरामको तीस ॥"
सो ठीक ही है। पंडित तो वैरागकी कथा करनेवाले उनकी कौन सुने? क्योंकि आजकल रईसोंका हालही एसा है-
"संगति गंडियानकी नीकी लगे भडुवानकी खातिर ताजी रहे, कुटनीनिकी लागें भली वतियां रडियानकी तो सिरवाजी रहे, नहि जात है वात गुणीकी सुनी कविको विदसे इतराजी रहे, निशवासर पास जु पाजी रहें, तो रईस या कालके राजी रहें." फिर उसके नेत्रोंके कटाक्ष वचनेको कौन समर्थ है? कहा है—

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शात् हरते वलम्।
भोगनात् हरते वीर्यं, वेश्या साक्षात् राक्षसी ॥

अर्थात—देखतेही चित्तको हेर छुवत शक्ति हर लेह, वीर्य भोगसे हरत है- वेश्या राक्षसी येह! यह प्रथम मीठे मीटे शब्दोंमें सुरीले कंठसे मोहित कर लेती है, फिर ज्योंही अपने ऊपर आसक्त हुवा अवलोकन करती है, त्योंही उसका घर चूहों के जैसे पोला कर सव द्रव्य खींच लेती है। और जब उसे वीर्य और धन हीनहुवा जान लेती है, तो वहुत बुरी दशामें छोड देती है। ठीक है "छूंछा कौने पुछा."

वेश्या पैसेकी स्त्री है । वह न तो बूढा देखती, न जवान, न बालक, न रूपवान, न कुरुप, मात दामसे काम रखती है। निश्चय समझो कि जिनकी होनहारही खोटी है उन्हेंही इसका शरण मिल जाता है । कैसी है वेश्या देखो—

" करम फूटी जोगणी, तीन लोककूं खाय ।

जीवित खावे कालजा, मरे नर्क ले जाय" ॥

तो भी व्यभिचारी निर्लज्ज जान बूझकर कुवेमें पडते है । व्यभिचार छिपानेसे कभी नही छिपता । जैसे लहसन गधोय विना नहीं रहता और किसी तरह नहीं तो चेहरासे तो अवश्यही विदित हो जाता है, प्रगट होनेपर व्यभिचारी को राजदरबार या कहींभी मान मिलता नही है, न वह किसी के निकट विश्वास पात्र ठहरता है, कोईभी उसे अपने यहां आने नहीं देते हैं, बल्कि पास बैठानेभी घृणा करते हैं, क्योंकि वह उस वेश्याके कारण न करने योग्य सबही कार्य करने लगता है । जैसे—"मांस भखै अरु दारु चखै न बुरासु कमे गणिका दई मारी । रांडकला परवीण सदा रति लीन सदा सु अधर्म विचारी ॥ लाल हरे शुचिता तनकी जन रुप सुकरे अपकारी । यार दुखारी भिखारी करे पर, तौ हु न

चेतत है व्यभिचारी ॥१॥ फिर और उसे क्या होता है सो सुनो—सम्पति धीरज धर्मनसे कुलकानकी वान सबे तजडारी। ज्ञाननसे अरु माननसे खल सोवत मांहि निशा अंधयारी, ॥ व्यर्थ समय अनमोलनसे बल तेजकी हानि सबे करडारी। शीलसो उत्तम रतन नसेपर तौहूं न चेतत है व्यभिचारी ॥२॥ इस प्रकार वह कामातुर अनेक प्रकार चोरी करता है, शिकार करता है। न अपने परिवार में स्नेह, न गुरुजनोंकी लज्जा, न कुळ के कोई धर्म कर्मकी याद रखता है। यथार्थ है—“कामातुराणां न भयं न लज्जा” वे तो दिनराति कुम्हार कैसी आगमेंही जला करते है। इससे उनका जप तप संयम नियम शील व्रतादि सब रजा मांग जाते हैं। कहा ही है:—

कायासे कामजात, गांठीसे दाम जात।
नारीसे नेह जात, रुप जात रंगसो॥
उत्तम सब कर्मजात, कुलके सब धर्मजात,
गुरुजनसे शर्म जात, कामके उमंगसो।
गुण रंग रीति जात, वेदसे प्रतीति

प्रभुजीसे नेह जात, अपनी मत भंगसो ॥
जपतपकी आसजात, सुरपुरको वास जात,
भुषण विलास जात, वेश्या प्रसंगसों ॥

इस लिये रे भाईयों ! चेतो! देखो, " वेश्याका मन सघनवन, कुच धन पर्वत घोर, तिस पंथासे वच रहो, लगे सुमन सर चोर." देखो, और भी कहते है " चमक दमक दिन चार की, फिर सुखापगी खाल, तासे तुम मानो कही, मत पड वेश्या जाल. " देखो ! जब तुम उसके घर जाते हो, उस समय तुमको कितना भय रहता हैं ? कैसी कैसी तकलीफें उठाना पडती हैं. जव वह नाखुश हो जाती हैं, तव उसके आगे मुहमें अंगुली देकर तुसकार सहते हो, जव कि वर्तमान कालमें अपनी खाश विवाहित स्त्रीही दगा दे देती हैं, तो फिर वेश्याने इस वातका साइनवोर्डही लगा रखा हैं, फिर उसका क्या भरोसा ? घरपर अपने यहां नौकर रखते और उससे जो जो काम लेते, वो वो काम तुम स्वयं वेश्याके यहां सेवककी तरह वजाते हो, और गाडी कमाईका पैसा विना किसि प्रकार खेद कियेही देते जाते हो. निजके स्त्री पुत्रोंको पाईभी देते वडे क्रोधित होते हो । मानोकि कभी वह तुम्हें

सुन्दर वचनभी बोले, तौभी समजो कि वह मात्र तुम्हें फसाने के लिये काठिन जाल है। देखो! एक कविने कहा है—

जबतक पैसा पास रहेगा, मीठी बात बतावेगी,
कंगालोंको अल्प समयमें, जूते मार भगावेगी.

अफसोस है कि तुमको लज्जा नहीं। यथार्थ में देखो तो ऐसे पुरुषोंका जीवना कुत्ते वा कौएके समान है। घर घरका उच्छिष्ट खाता फिरे है, तौ भी पेट भरता नही है। घरों घरसे तसकार पाता है। यह मूर्ख घरकी रूपवान पद्मनी स्त्रीको छोडकर यहां वहां सुअरकी नाई मैलेपर मुंह डालता फिरता है. देखो, कहा है की—

नारी जघनरन्ध्रस्य विण्मूत्रमय चर्मणा।
वाराह इव विड्भक्षी हन्तमूढा सुखायते॥

अरे रे! कैसी उनकी दुर्गति होती, तौभी मूढ लोग उसीमें रचे है। हाय! कैसा उल्टा वक्त आया, कि स्त्री जो मर्दकी छाया समान थी, सो अब मर्द उसकी छायासेभी गया बीता हो गया! यदि किसी घरके लोग कुछभी ठपका (उलाहना) देवे, तो नाक भौंह सिकोड़कर उसकी ओर कुदृष्टि करते हो, परंतु उस काम कलाके यरां तो॰

भी हंसी बंद नहीं होती ! उसके दुर्वचनही तुम अपना कल्याण का मूल समझते हो। उसका पीकदान साफ करना और जुतिया पोछनाही अपने जीवनका सर्वस्व मान रहे हो। क्या कभी अस्पताल की ओर गये हो ? कभी वर्तमान समाचार पत्रोंमें नोटिस वांचते हो तो अमृताविन्दु (सुजाक दवा), उपदंश (गर्मी) की दवा, धातुपुष्टकी गोलियां, नपुंसत्वारि तेल, कामोद्दीपन चूर्ण, बल वढानेवाला पाक, स्थंभनवटी आदिकी भरमार रहती है, सैकड़ों आदमी नीमकी डाली हाथमें लिये मखियां उडाया करते हैं। देखो, वेश्याके घर तुमभी जाते, तुम्हारा भाईभी जाता, वापभी जाता, वेटाभी जाता, वहनोई भी जाता, सालाभी जाता, अर्थात सभी जाते हैं। अव विचार करो, कि उससे तुम्हारा कौनसा नाता हैं ? तुम वेश्या के यहां क्या गये अपनी मां, भाई की औरत (भौजाई), वहिन, वेटि आदि सबसे विषय करचुके। वेश्याके यहां कोई जातिका विचार नहीं। वहीं सब एक विटाल जात है। नीच ऊंचका कोईभी विचार नहीं। चाहे जो आवे और चला जावे। परंतु धर्मशालाकी तरहसे उसका टेक्स भर चुकाना चाहिये। विना पैसे रूपवान राजपुत के समान तरुण वयस्कभी तृण समान है। वेश्यावोंके भोजनका कोई ठिकाना नहि। उनका भोजन

मांस मदिरा चांडालके हाथका पकाया हुवा होता है, वह सब वेश्यासक्त पुरुषके पल्ले पड़ता है। चाहे वह अधम खावे नहीं, परंतु पैसा देकर वेश्याको तो खिलाता है। एक कहावत है कि–वकील, वैद्य और वेश्या स्वप्न में भी किसीका भला नहीं चाहता है। वकील हमेशा लड़ाई दंगा चाहता है, वैद्य बीमारी वढनेमें खुशी होता है और वेश्या बृह्मचर्य भंग पुरुषोंकी वृद्धिकी आशा करती है। सो इन तीनोंका वान तो नियामित आहारी, धैर्य और क्षमावान, तथा ब्रह्मचारियोंपरही नहीं चली छुरी, वो मांसपर चलती है, न कि हाडपर। 'श्रीमानों पर तीनोंका दावा, गरीब पर नहीं किसीका तावा.' अब भला ऐसे समयमें लेक्चरार (व्याख्यान कर्ता) गला फाड़ फाड़ कर प्लेटफार्मपर कूदते कूदते टेबिलपर हाथ पटकते और सिर मटका मटका कर स्पीचें देते, परंतु यह नहीं सोचते, कि पहिले रोगीका कुपथ्य छुड़ावे, पीछे दवा लागू होवेगी, अर्थात् उपर कहे हुवे तीन प्रबल शत्रुवोंसे छुटकारा पावे, तो ही तुम्हारे उपदेशका असर उनपर हो सक्ता है, परंतु जैसे कामीको काम प्रबलतासे उत्पन्न होकर उन्हें उन्मार्गमें प्रेरित करता है, उसी प्रकार दयालु पुरुषोंकी

उत्तम कार्योंमें प्रेरित करती है। वे विचारते है की रस्सीकी रगड़से पथ्थर कट जाता है, ऐसेही कोई वक्त उपदेश असर कर जायगा। अच्छा! अब और भी सोचो कि यदि वेश्याको तुम्हारे योगसे गर्भ रह गया और पुत्र पुत्री कुछ भी उत्पन्न हो गया, सो पुत्र कसाई आदिका धंधा करेगा। और पुत्री वेश्याकाही धन्धा करेगी। इसका पाप भार सब आपकेही सिर होगा। कुछ ऐसा नियम नहीं कि वेश्या वंध्या ही होती है। कितनी वेश्यावोंके सन्तान देखी जाती है और कितनी, कामी पुरुषोंका प्रेम न घटने पावे, इसलिये गर्भ पात भी कर देती है। उस हिंसाका पाप सब उनके भक्तों परही रहता है। ये लोग जो इतना सुन्ते देखते हुवे भी नहीं सीखते तो समझना चाहिये कि—

अज्ञानी मदमस्त हो, फिरे डोलते छैल।
सींग पूंछ ते रहित सो, निश्चय जानो बैल,।

कारण की पशु के भाई बहिन माता बेटीका विवेक नहीं और लज्जा भी नहीं, फिर पशुही हैं। यहां ऐसी दशा है—

शरमको भी यहां पर शरम आय है,।
जो बे शरम हो वह न शरमाय है॥

अरे! कहां तक कहैं? तुमको जब कोई आदमी मां बहिन बेटी

की गाली देता है, तो फौजदारीमें दावा करने जाते हो और साक्षात् वेश्याके यहां, जहां तुम्हारा बाप जाता है, वहां ही अन्य हजारों पुरुष जाते हैं. फिर क्या वे तुम्हारे बाप नहीं.? वेश्या से तुमने पुत्री पैदा की, सो पुत्री भी हजारोंको क्या जंमाई नहीं बनाती? वेश्याके घर तुम्हारे बापने पुत्री उत्पन्न की, सो क्या वह हजारों बहनोई बनाये बिना रह सकती है? अरे जरा सोचो तो सही. यह वेश्या कैसी है कि:—

जात्यंधाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखीलांगाय च।
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गरत् कुष्टाय भूताय च ॥
यच्छंतीषु मनोहरं निजवपु लक्ष्मीलवश्रद्धया।
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिका स्त्रस्त्रीषु रज्येतकः ॥

अर्थात्—वेश्या अल्पहुं द्रव्य पानेके लोभसे अपना सुन्दर शरीर भरी थली कुरूप, जन्मांध, वृद्ध, क्षीण शरीर, चातुर्यहीन नीचकुली, कोढ़ी, कुष्मक, पांगुलाके स्वाधीन तुच्छ रूपयेके लिये कर देती है, सो ऐसी वेश्यामें क्या कोई उत्तम पुरुष रत होसक्ते है? नहीं, कभी नहीं. देखो, तुम तो उसके घरमें हो ही, और वह दूसरे हजारा बतातो है। भाइयों! यदि परकी स्त्रीका दुराचार फिर एक बारभी सुननेमें आ जाने, तो फिर ९

लिये परित्याग कर देना योग्य है, की जैसा महाराज भर्तृहरीने नीचे लिखे वाक्यको विचारते हुवे स्वपरस्त्रीको त्याग करदिया-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता ।
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ॥
अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या, ।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

अर्थात्-जिस स्त्रीको (रानीको) मैं सच्चे दिलसे प्यार करता हुं, वह अन्यही पुरुषको प्रेमालिंगन करती है और वह पुरुषभी अन्य स्त्रीको चाहता है, और वह अन्य स्त्री मुझे चाहती है, इस लिये धिक्कार है रानीको, उस पुरुषको, उस स्त्रीको, और मुझे और उस कामको, कि जिसके वशीभूत होकर जीव ऐसे अनर्थ करता है। त्यागो, इससे तुरंत मुंह मोड़ो । यदि-तुमको अपनी सुधारना है और स्त्रियोंको वशीभूत वा पतिव्रता रखना चाहते हो तो अपने आचरण सुधारो । वड़ोका असर छोटों पर पड़ता है । कुमार्गी वड़े छोटोंको कभी सुमार्गी नहीं बना सक्ते । वे बच्चे इन अनाचारोंको सेवन करनाही अपनी कुल परंपरा मान्ने लगते है । स्त्रियोंपर तो बहुत ही बुरा असर आ कर पड़ता है । वे सोचती है कि जव हमारा

पति, पुत्र, भाई, वाप दस मिनट के सुख के लिये कुत्ती के समान सूकरी रांडको सैकडों रुपये देकर भी उसकी गालियां खाकर प्रसन्न होते है, तो मैंने क्या गुनहगारी की है, जो दिन रात घररूपी पींजरेमे वंद रहुं, सदा उनकी चाकरी करूं, गाली खाउं, मार खाउं, और फिर भी विधप्पन भोगूं? (पतिका सुख शौक के कारण कुछभी न मिले) तो ऐसी लाज पर पडे गाज (विजली). अपन तो मौज उडावों. वश! निरंतर वे भी विरहकी वेदना और ताड़न बंधन के दुःखोंसे संतप्त चित्त होकर किसी भी कुटनीके द्वारा कहीं कहीं छिप कर यार पर प्यार करने लगती है और यदि उन्हें विशेष कुछ डांट डपट वतलाई गई, तो पर्दा फाश. फिर तो सरे वाजार खूबही रंग वर्षाने लगती है। पर सब उनके धनियोंका ही दोष है। व्याभिचार एक प्रकारकी चोरी ही है, क्योंकि जिस वस्तु पर अन्य किसीका अधिकार हो और वह वस्तु, विना उसके दिये ग्रहण करना ही चोरी है, सो कोई पुरुष खुशी खुशी होकर कभीभी अपनी स्त्री दूसरेके हाथमें नहीं दे देता है। चाहे तो वह बिलकुल अशक्त और नपुंसकभी क्यों न हो, कोई भी उसे कदाचित् उसकी स्त्रीके विषय कुछ

को तुरत वह मारे क्रोधके लाल नेत्र कर लड़नेको तैयार होता है। दुसरेको क्यों? तुम्हीं अपने पर स्वयं विचार कर देखो। कहा है—अपनी परतक्ष देखके, जैसा अपने दर्द, वैसाही पर नारिका, दुखी होत है मर्द।

प्रत्येक पुरषको मरना स्वीकार हो जाता है, परंतु जीतेजी कभी अपनी औरत दुसरेके हाथ नहीं जाने देना चाहता है, किन्तु यही चाहता है कि मरने के पीछेभी मेरी स्त्री सदाचरणपूर्वक पूर्ण बृह्मचारणी रहे और अपना जीवन परम ब्रताचरण पूर्वक वितावे। जस उक्त बातका विचार हमारे इन आधुनिक विचारों के शील रहित तथा कुशीलके अनुमोदक विधवा विवाहके पोषक भाइयोंको करना चाहिये कि जब विधवा स्त्री एक पुरषको स्वीकार कर चुकीथी और लग्नके समय अपना जीवनका सर्वस्व अपने पतिको दे दियाथा, दर्मे दश पतिका वियोग हो गया और वह किसीको निज हस्तसे तो दे गया नहीं है, फिर वह कैसे दूसरेको अंगीकार कर सक्ती है? पतिव्रत शीलव्रत कहां रहा? वह कुलटा हो गई। वेश्याके समान और उसका ब्याहक चोर और जूटन खानेवाले, कुत्ते व कागके समान हुवा। फिर चतुर्थ अणुव्रततो बिलकुल ही गया और

उसके जाते ही ब्रह्मचर्य तो क्या सार्वदेशिक त्याग हो नहीं सकता है। हिंसादि पांचों पाप पूर्ण रूपसे इसके चारित्रको ढांक लेते हैं, इत्यादि विचार कर अपनी मिथ्या हठको छोड़ देना चाहिये। विधवा हो जाने व पुरुषों तरुणावस्थामें कन्या न मिलने के कारणोंको ढूंढ़ कर उन्हें दुरस्त करना चाहिये और अपने पूर्वकृतकर्मोंका विचार करना चाहिये। अब कदाचित् तुम यह कहो कि इतने सब दुर्व्यसन तो उसके घर जाकर वा अपने घर बुलाकर भोगने से होते हैं, परंतु यह तो हम नहीं करते है। केवल लग्नादि अवसरों में उसे बुलाकर नांच गान करा लेते हैं, सो ठीक! यह तो ऐसाही हुवा, कि हम चोरी तो नहीं करते है, परंतु चोरोंको उपाय बताते, चोरीकी अनुमोदना कर चोरी करवाते है, क्योंकि आप जो द्रव्य उसे देते हैं, उस द्रव्यसे ही वह मद्य मांस खावेगी, शिकार करे और करावेगी, व्यभिचार के लिये तो उसका जन्म ही हुवा है। आपको धनी और रसिक समझकर आपके ही लड़कोंको जालमें फसावेगी, आप की परदेशाकी स्त्रियोंको फुसलावेगी। कभी तो आपको भी ऐसा बान छोड़ेगी, कि फिर उसके उसके फिरोगे। और भी देखो, जैसे हम ऐसा देखकर ८

उत्तेजन देते हो, वैसे किसी गरीबको भी कभी पुंजी लगाकर उसकी आजीवका स्थिर करके उसको व उसके आश्रित जीवोंको धर्म मार्गमें लगाया है? यदि लगाया है, तो प्रगट हुवा ही होगा, कि वह उपकृत पुरुष आपका कैसा मानपूर्वक उपकार मान्ता है और आपकी रकमका ब्याज देते हुवे भी आपकी हजारों खुशामदें करता है। आपके दुःखोंमें अपनेको दुखी समझता है। आपके प्रत्येक कार्यमें तन मन वचनसे सहायता करता है और फिरभी दिनरात आपकी रकम कब चुक जावे इसी चिंतामें रहता है। रकम चुकाकरभी आपको देखतेही नीची दृष्टि कर लेता है।

इसीसे "परोपकाराय शताम् विभूतय;" की कहावत चरितार्थ है। परोपकारका फल अन्यथा नहीं जाता है। जिसपर उपकार किया जाता है, वह भवांतरमें भी बदला देता है, परंतु रांड कृतघ्नी है। उपकार मानना तो दूर ही रहो, परंतु उल्टा अपकार करती, निंदा करती, कुवचन कहती, और क्या जूतियोंसे पिटवाती है। देखो! कवि क्या कहता है—

परिपूरण पापके कारणसे,
भगवन्त कथा न रुचे जिनको ॥

सुकाजको छोड कुकाज करे,
धन जात है व्यर्थ सदा तीनको ॥
एक रांड बुलाय नचावत है,
नहि आवत लाज जरा तिनको ॥
मृदंग् भने धिक् है धिक् है,
सुर ताल पुछे किनको किनको ॥
तव हाथ पसायके रांड कहे,
धिक् है इनको इनको इनको. ॥

भाइयो! निद्रा छोड़ो, जागो, देखो. और तो अचेतन जो जडपदार्थ वेभी इस प्रकार के शब्दों द्वारा तुमको चेताते हैं। वह पातुर तुमको हाथ उठा उठाकर जाग्रत करती है। जितने राग अलापती है, वे सब रसिकही हुवा करते है। देखो, कभी कभी तो उस गायन सुनने मात्रसे अति लोलुपी है, उनका तो वीर्यभी धोतिके अंदर छूट जाता है। देखो, उस नीचनी के अवलोकन मात्रमेंही [illegible] सब इसका कामकाज और शरीर सुध बुध भूल [illegible] उसीके ध्यान में मग्न हो जाते हैं और क्या [illegible]

महाराजा, सेठ, साहूकार, अहलकार, मुंसिफ, डाक्टर, मास्टर, अमीर, उमराव, श्रीमान, कंगाल जिसे चाहे वारंटके तरहसे खेंचकर बुलाती है। जैसे राजावों की आज्ञा प्रमाण प्रजाको अपने हाथके काम छोड़कर तुरंत जाना पड़ता, इसी प्रकार जल्दी उसका बुलावा हुवा, कि फिर किसकी ताकत, जो इंकारी करदे? सोतेसे उठ कर जावें, खाना छोड़ कर जावें, दुकान बंद करके जावें, घरमें बीमार छोड कर जावें, पासमें पैसा हो तो ले जावें, न हो तो उधार ले कर जावें, उधार न मिले तो जोरका गहना बेच कर या गिरवी रख कर ले जावें, किंतु कलियुगी देवीके बन्दे चूकनेवाले तो नहीं। खाना चूक जाय तो बलासे, हाजिरी न चूकना चाहिये। क्या आपने मजलिशमें देखा! कि जो अमलदार लोग बड़े बड़े रईसोंको केवल दो शब्दोंमें (ले आव) अपने स्वरू बंदीकी दशामें पकड़े हुवे बुला लेते है। जो कभीभी विना किसी खाश कार्यके अपनसे उच्चाधिकारी के मुकाम परभी नहीं जाते, प्रजाके घरोंमेंतो किसी भारी मामलेकी जांच (जो इजहारों और साक्षीयोंसेभी ठीक ठीक न होसकी हो) करने जाते है, तब साथमें पोलिस वगैरः कदने ही मातहत लोग आगे आगे दौडते जाते है, ऐसे लोग

जो वेश्याओं के कान काटते है, उनसे गायन कीर्तन भजन करावो। नीति व धर्म सम्बन्धी गायन स्त्रियोंमे गवावो, जिनसे श्रोतावोंको भी कुछ बोध होवे। विशेष कीर्ति, दान और नामके इच्छुक हो तो विद्यादानके लिये कुछ२ रकम बोर्डिंग, श्राविकाश्रम आदीकुं भेजो, कंगालोंको खिलावो, अनाथ-शाला खोलदो, गरीब तथा पर्देवाली अशक्त विधवाओंका पालन करो, लग्नकी खुशीमें दानशाला नियत करदो, उत्तमो-त्तम पुस्तकें मुफ्त बांट दो, पांजरापोल निकालो, वांचना-लय, विद्यालय, ब्रह्मचर्याश्रम खोल दो, उद्योगशाला खोलदो, फिर देखो कितना नाम होता है? कामभी होता है, दामभी ठिकानेसे रहता है, लोक परलोक दोनों सुधरते है, पुस्तान पुश्त तक कीर्ति स्थिर होती है, नहीं तो पैसा खोकर यों कुत्तेकी तरह मर जाना पडेगा, और दुर्गतिमें पडकर मारन ताडन छेदन भेदन सूलीरोहणादि दुःख भोगोगे। देखो, एक शायरने क्याही अच्छा कहा है:—

मत करो प्रीति वेश्या विष बुझी कटारी,
है यही सकल रोगनकी खानि हत्यारी॥ टेक.
औषधि अनेक है सर्प डसेकी भाई,

पर इसके काटेकी नहीं कोई दवाई ॥
गर लगे बान तो जीवित ही बच जाई,
पर इसके नैनके बानसे होय सफाई,
है रोम रोम विष भरी करो ना भारी ॥ है यही—१
यह तन मन धन हर लेय मधुर बोलीमें,
बहुतोंका करे शिकार उमर भोलीमें ।
कर दिये हजारों लोट पोट होलीमें,
लाखोंका मन कर लिया कैद चोली में ।
गई इसी कर्ममें लाखोंकी जमींदारी ॥ है यही—२
हो गये हजारों के बल वीरज छारा,
लाखोंका इसने वंश नाश कर डारा ।
गठिया प्रमेह आदिकने देश बिगारा,
भारत गारत हो गया इसीका मारा ।
कर दिये हजारों इसने चोर अरु ज्वांरी—है यही—३
इसही ठगनीने मद्य मांस सिखलाया,
सब धर्म कर्मको इसने धूर मिलाया ।
अरु दया क्षमा लज्जाको मार भगाया,
ईश्वरकी भक्तिका मूल नाश करवाया ॥
है इसके उपासक रौरव (नर्क) के अधिकारी—है यही—४

वह नव युवकों को नैन सैनसे खावे,
अरु धनवानों को चद्द गद्द कर जावे।
धन हरण करे अरू पीछे राह बतावे,
करे तीन पांच तो जूते भी लगवावे॥
पिटवाकर पीछे लावे पोलिस पोकारी,—है यही—५
फिर किया पुलिसने खूब आतिथि सत्कारा,
हो गई सज़ा मिला मज़ा इश्कका सारा।
जो झूठ होय तो सज्जन करो विचारा,
दो त्याग झूट करो सत्य वचन स्वीकारा॥
अब तजो कर्म यह आति निंदित दुखकारी, है कही—६

और भी एक कवि इस विषयमे लिखते है की—

गज़ल।

ब्याहीमें नाच रंग कराओगे कबतलक।
इज्जतको अपनी दाग लगाओगे कबतलक॥ १॥
औरतको भेष मर्दको करनेमें पाप है।
भर स्वांग खोड़ियोंमें नचावोगे कबतलक॥ २॥
गाती हैं नार गालियां करती हैं मसखरी।
बूढे बडोंका नाम डुबावोगे कबतलक॥ ३॥

कामी पुरुष हैं देखते फिरते हैं नारियां ।
पापी बनोगे शील गमावोगे कबतलक ॥ ४ ॥
रंडीके नृत्य गानको हैं देखती स्त्रियां ।
व्यभिचारकी है वेलि वढावोगे कबतलक ॥ ५ ॥
फुलवारी वो दारुदमें खोकरके लक्ष्मी ।
धन माल मुफ्त अपना लुटावोगे कबतलक ॥ ६ ॥
त्यागो कुरीतियोंको है जैनी पुकारता ।
सोता है देश इसको जगावोगे कबतलक ॥ ७ ॥

अंतिम निवेदन.

ज्ञातिहितैषी वीरो ! जो जो वात इसमें लिखि गई है, वे सब प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं, लेख वढनेके भयसे इत्तनेहीमें संकोचकर कहा है, लेखनी इसके सम्पूर्ण अवगुण लिखनेको असमर्थ है । जो जो हानियें वेश्यासे कही, वे परस्त्रीमेंभी होती है, भेद इतनाही है, की परस्त्री वह विवाहित स्त्री है, जो एक वार कीसी पुरुषको स्वीकारकर उसके तावेमें आ चुकी है, और वेश्या अविवाहित स्वतंत्र स्त्री है, जो न किसिके तावेमें हुई, न होगी । दोनोमें मात्र इतनाही

है। पाप तो बराबरही है, इसलिये "गतम् न शोचामि"का चिंतवन करके शीघ्र अपने प्रधान भूषण शीलको धारण कीजिये और सदाचारकी वृद्धि कीजिये।

चाह इती अब या जगमें नहिं लम्पट चोर लबारनकी है।
ना बिसनीनकी ना तिसनीनकी ना मृपाभाषी गमारनकी है॥
ना रुण मारन ना मत वारन ना शठ नीच जुवांरनकी है।
जितनी कवि श्रावकजी जगमें, गुण भूर भरे गुणवारनकी है॥

आशा है कि सज्जन् गण क्षीर नीर की ज्यों विचार कर मेरे शब्दोंका ख्याल न कर सार ग्रहण कर लाभ उठावेंगे और अपने मित्र मंडळकोभी इस लाभसे वंचित नहीं रखेंगे। अलम् विद्वत्सु।

जाति सेवक-

माष्टर दीपचंदजी उपदेशाक (अनुवादक)

श्री जैन तत्व प्रकाशिनी सभा—इटावा।

जैन जातिके वीरो! और सुपुत्रो!! जागो!!!

प्यारे मित्रो! एक समय वह था कि सम्पूर्ण संसार में इस जैनधर्म का डंका बजता था, परन्तु साम्प्रात हमारी जाति आज केवल—अंगुलियोंपर गिनने योग्य ही जैनियों की

दिगंबर जैन पुस्तकालय सुरतका सूचीपत्र.
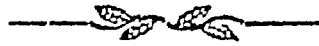
पद्मपुराण (जैन रामायण पृष्ठ १०७६)	६)
हरिवंश पुराण (जैन महाभारत, पृष्ठ १०००)	५)
चार चौवीसी पाठ संग्रह (चार प्रकारी चौवीस जीन पूजा	५)
रत्नकरंड श्रावकाचार (सदासुखजी कृत बडा ग्रंथ)	४)
भगवतीआराधना (ध्यान-आराधना वर्णन, पृष्ठ १२७६)	४)
सर्वार्थ सिद्धि (टीका सहित, नवीन. पृष्ठ ९००)	४)
आत्मख्याति समयसार (अध्यात्म-नयका वर्णन)	४)
ज्ञानार्णव (शुभचंद्राचार्यकृत अपूर्व ग्रंथ, दुसरी आवृत्ति)	४)
स्याद्वाद् मंजरी (स्याद्वादका अपूर्व कथन)	४)
आराधनासार कथा कोष (१२६ कथावोंका संग्रह)	३॥
जैन संप्रदाय शिक्षा (ग्रहस्थाश्रमका वर्णन पृ. ८००)	३॥
पुण्याश्रव कथा कोष (५६ कथावोंका संग्रह पृ. ४८०)	३)
त्रिवर्णिकाचार (श्री सोमसेनाचार्य कृत. मराठी)	३)
महापुराण (आदि पुराण. मराठी. पृष्ठ ३२६०)	२५)
पांडव पुराण (छंदोबद्ध पृष्ठ ४०४)	२॥
प्रद्युम्न चरित्र (भाषा वचनिका. पृष्ठ ३५०)	२॥
तेरहद्विप पूजन विधान (४५८ मंदिरोंका पूजन)	२॥

धर्म परीक्षा वचनिका (श्रृंगार रसका अपूर्व्व कथन) १)
श्री धन्यकुमार चरित्र (नवीन) ०।।। जैन सिद्धांत दर्पण ०।।।
जैन धर्मका महत्व (नवीन उपयोगी ग्रंथ) ०।।।
चोवीस जीन पूजा ०।।। वृंदावन विलस ०।।।
क्षत्रचूडामणी काव्य (जीवंधरस्वामी चरित्र) ०।।।
तत्वार्थ सूत्र (मोक्षशास्त्र भाषा टिका) ०।।।
संशयतिमिर प्रदीप (पंचामृत अभिषेक निर्णय) ०।।।
सुशीला उपन्यास १) हितोपदेश (भाषाटीका) ०।।।=
जीनदत्त चरित्र ०।।। तीर्थंकर चारित्रें (मराठी) ०।।।
मनोरमा उपन्यास ०।। भाषा पूजा संग्रह ०।।
नर्कदुःख चित्रादर्श (नर्क दुःखोंके ५८ रंगीन चित्रों) ०।।=
ज्ञान सूर्योदय नाटक ०।। नित्यपाठ संग्रह (भाषा) ०।।
अंजना सुंदरी नाटक ०।। सुखानंद मनोरमा नाटक ०।।
बाळबोध व्याकरण ०।= वसुनंदी श्रावकाचार ०।।
जैन बालगुटका (प्रथम भाग, बडा नवीन.) ०।=
जैन नित्य पाठ संग्रह (अपूर्व्व रेशमी गुटका) ०।=
नित्य नियम पूजा ०। जैन पद संग्रह प्रथम भाग ०।=
राजुल नौपाठ ०।– कर्म चरित्र सार ०)=
जैन पद संग्रह दूसरा भाग ०। जैन पद संग्रह तीसरा भाग ०।–
" चौथा भाग ०।।= " " पांचवां भाग ०।=

दश लक्षण पूजा ०। रत्नकरंड श्रावकाचार (सार्थ) ०
द्रव्य संग्रह (सार्थ) ०। भक्तामर स्तोत्र (सार्थ) ०
शील कथा (भारामलजी कृत) ०।- दर्शन कथा ०-
परमात्म प्रकाश ०।≈ पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ०।
श्रावक वनिता बोधिनी ०। चोवीस ठाण चर्चा ०।-
समेदशिखर पूजा विधान ०। अकलंक चरित्र ०)≡
श्रुतावतार कथा ०)≡ नारी धर्म प्रकाश ०)≡
जिनति संग्रह ०)≡ निशि भोजन कथा ०)≡
जंबुस्वामी चरित्र ०।≈ यमनसेन चरित्र ०
उपदेश सिद्धांत रत्नमाळा ०।। सुक्त मुक्तावली ०
जैन विवाह पद्धति हिंदी ०)≡ मराठी ०।=
दिगंबर जैन ग्रंथकर्ता और उन्के ग्रंथों (नवीन) ०)≡
बुद्धजन सत सई (७०० दोहा) ०)≡ हिंदीकी प्रथम पुस्तक ०)=।
हिंदीकी दुसरी पुस्तक ०। हिंदीकी तीसरी पुस्तक ०)=
अनुभव प्रकाश (नवीन) ०।= ज्ञान दर्पण (नवीन) ०।
अहिंसादिग्दर्शन ०। गोमट्टसार जीव कांड (संस्कृत) ०।=
बालबोध जैनधर्म प्रथम भाग ०)०।। द्वीतीय भाग
" " तृतीय भाग ०)= जैन स्त्री शिक्षा प्र.
छः ढाला (बडा और नवीन) ०)= छालोंके

क्रिया मंजरी (नवीन) ०)≈ मोक्ष शास्त्र (मूळ) ०)≈
प्राण प्रिय काव्य ०)≈ इंद्रिय पराजय शतक ०)≈
वारस अणुवेरखा ०)-। भक्तामरस्तोत्र(मूळ-भाषा) ०)-
सामायिकपाठ (विधिसह) ०)- दर्शन पाठ ०)-
निर्वाणकांड (भाषा-गाथा)०)- पंच मंगळ पाठ ०)-
अर्हत्पासा केवळी ०)≈ सामायिक-आलोचना पाठ ०)-
इष्ट छत्तीसी ०)०।। मुनिवंश दीपीका (नवीन)०)०।।
प्रातः स्मरण मंगल पाठ ०)०।। विषापहार भाषा ०)०।।
मृत्यु महोत्सव ०)-।। श्री मुक्तागीरीका नकशा ०।-
समेदशिखरजी–चंपापुरी–पावापुरीके नकशे प्रत्येका ०।
श्रीमान त्यागी ऐलक पन्नालालजीका फोटो ०)-
श्रीमान त्यागी क्षुल्लक मन्नालालजीका ध्यानारुढ फोटो ०)-
जीनेंद्र गुणानुवाद पच्चीसी ०)-। दीपमालिका विधान ०)-
समाधि-मरण भाषा ०)०।।। आरती संग्रह ०)०।।।
शिखर माहात्म्य ०)०।। होलीकी कथा ०)-
श्रेणिक चेलना चरित्र ०)≈ स्वानुभव दर्पण ०।

गुजराती भाषाके पुस्तकों–

धर्म परीक्षा (पवनवेग मनोवेगकी अपूर्व कथा) १)
नित्य नियम पूजा (सार्थ) ०।। सुकुमाल चरित्र ०।≈
शेठ-नमोकार मंत्रनो प्रभाव ०। भक्तामरस्तोत्र (सार्थ)०)≡

कल्याण मंदिर स्तोत्र (सार्थ)	०।	सल्लेखना-मृत्यु महोत्सव	०।
दिगंवर जैन स्तवनावली	०।	अनित्य पंचाशत (सार्थ)	०।
दिगंवर जैन ज्ञान संग्रह	०)≡	अकलंक स्तोत्र (सार्थ)	०)≡
लघु अभिषेक (मुळसंधी)	०।-	धर्मप्रबोधनी	०)=॥
श्रुतपंचमी माहात्म्य (पूजनसहित)	०)=	आलोचनापाठ(सार्थ)	०)=
अनित्य पंचाशत (सार्थ)	०)=	रत्नकरंड श्रावकाचार (सार्थ)	०)=
जैन सार पद संग्रह	०)=॥	ज्ञानबाजी (खेलने योग्य)	०)-
ईश्वरकर्ता खंडन	०)=	जैन धर्मनी माहीति	०।
सामायिक पाठ (विधि, अर्थ, और आलोचना पाठ सह	०)-॥		
पंचेंद्रीय संवाद	०)-॥	शील सुंदरी रास	०)=
श्रावक प्रतिक्रमण (सार्थ)	०)-॥	आलोचना पाठ (सार्थ)	०)-
विद्यालक्ष्मि संवाद	०)-	रवीवार व्रत कथा	०)-
कळियुगनी कुळदवी	०)०॥।	सामायिक भाषापाठ (सार्थ)	०)-
तमाकुनां दुष्परीणामो	०)-	जैन नियम पोथी	०)०॥
जीनालय गमन	०)०॥	महावीर चरित्र	०)≡

इनसें अतिरिक्त सभी प्रकारके हिंदी, मराठी, गुजराती और संस्कृत भाषाके जैन ग्रंथों मिलते है. मिलनेका पत्ताः—

मूळचंद किसनदास कापडीआ,

'दिगंवर जैन पुस्तकालय' चंदावाडी—सुरत

॥ श्रीमहावीरायनमः ॥

॥ चौवीसी पद ॥

सुश्रावक विनयचँदजी कृत

जिसको।

श्री १०५ श्री मूलमुनिजी महाराज

से शुद्धकरवाकर ज्ञानलाभार्थ

साधुमार्गी जैनउद्योतिनी सभाने

हाफिज फैयाजुद्दीन प्रिन्टर के प्रवन्ध से

अबुलउलाई प्रेस आगरा में मुद्रित कराया

विक्रमार्क १९६७ वीर निर्वाण सं २४३७

द्वितियवार १०००) (मूल्य प्रति पुस्तक -)

॥ श्री महावीरायनमः ॥

* अथ चौबीसी पद *

॥ढाल उमादे भटियाणी ए देशी ॥ श्री आदीस्वर स्वामी हो प्रणमू सिरनामी तुम भणी॥प्रभु अंतरजामी आप मोपर म्हैर करीजै हो मेटो जै चिन्ता मनतणी म्हांरा काटो पुराकृत पाप॥श्रीआदीस्वरस्वामी हो प्रणमुँ सिरनामी तुम भणी॥टेर॥१॥ आदि धरम की कीधी हो भरतषेत्र सर्पणी काल मैं प्रभु जुगला धरम निवार पहिला नरवर १ मुनिवर हो २ तिर्थंकर ३ जिनहूवा ४ केवली ५प्रभु तीरथ थाप्या चार ॥श्री॥ २ ॥ मामरु दिव्या था- री हो गज होदै मुक्ति पधारिया तुम ज-

नम्या ही परमात्मा पिता नाम म्हाराजा हो भव देव तणो कर नर थया प्रभु पाम्यां पद निरवाणा ॥ श्री ॥ ३ ॥ भरतादिक सौ नंदन हौ वे पुत्री ब्राह्मी सुंदरी ॥ प्रभु एथाना अंग जात सगला केवल पाया हो समाया अबिचल जोत में केइ त्रिभुवन में बिख्यात ॥ ४ ॥ श्री ॥ इत्यादिक वहू तारया हो जिन कुलमें प्रभु तुम ऊपना केइ आगम में अधिकार और असंख्या तारया हो ऊधारया सेवक आपरा प्रभू सरणाही आधार ॥ ५ ॥ श्री ॥ असरणा सरणा काही जेहौ प्रभु बिरध बिचारो साय वाकेइ अहो गरीबनिवाज सरणा तुम्हारी आयो हो हूं चाकर निज

चरना तणो म्हारी सुणिये अरज अवा-
ज ॥ ६ ॥ श्री ॥ तू करुणा कर ठाकुर
हो॥ प्रभु धरम दिवाकर जग गुरू कोइ
भव दुषदुकृतटालविनयचंदनें आपो हो
प्रभु निजगुण सँपनसासती प्रभु दीना-
नाथदयाल ॥७॥श्री॥ इति ॥१॥

ढाल ॥ कुविसन मारग माथैरे धिग
॥ २ ॥ ए देशी ॥ श्री जिन अजि-
त नमो जयकारी तुम देवनको देवजी
जय सत्रु राजा नैं विजिया राणी को
आतम जात तुमैवजी ॥१॥ श्री जिन
अजित नमो जयकारी ॥टेर॥दूजा देव
अनेरा जगमें ते मुझ दायन आवेजी ॥
तहमन तह चित्त हमनैं एक तुहीज अ-

धिक सुहावैजी ॥ श्री ॥ २ ॥ सैण्यादेव
घणा भव २ में तो पिण गरज न सारी
जी ॥ अबकै श्री जिन राज मिल्यौ तू
पूरण पर उपगारीजी ॥ ३ ॥ श्री ॥ त्रि-
भुवन में जस उज्वल तेरौ फैल रह्यौ ज-
ग जानेंजी ॥ वंदनीक पूजनीक सकल
कौ आगम एम बखानेंजी ॥ ४ ॥ श्री ॥
तू जग जीवन अंतरजामी प्राण आधार
पियारौजी सब बिधिलायक संतसहायक
भगत वछल बृध धारौजी ॥ ५ ॥ श्री ॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि कौ दाता तौ सम
अवर न कोईजी॥ बधे तेज सेवकको दि-
न २ जेथ तेथ जिम होईजी ॥ श्री ॥ ६ ॥
नंत ग्यान दर्शण संपति ले ईश भयौ

अविकारीजी ॥ अविचल भक्ति वनि ऊ-
द कूँदैओ तौ जाणू रिझवारीजी॥ श्री ॥
॥ ७ ॥ इति ॥ २ ॥ ढाल ॥ आज
मारा पारसजी नै चालौ वँदन जइए ॥ ए.
देशी ॥ आज म्हारा सँभव जिनकै हित
चितसूं गुण गासां मधुर २ स्वर राग अला-
पी गहरै साद गूँजा सां राज॥ आजम्हा-
रा सँभव जिनकै हित चितसूं गुण गा-
सां॥ आ ॥१॥ नृप जितारथ सेन्या राणी
तासुत सेवक थासां॥ नवधा भक्त भावसौं
करनैंप्रेम मगन हुई जासां॥राज आ०॥२॥
मन वच काय लाय प्रभु सैती निस दिन
सास उसासां॥ संभव जिनकी मौहनी मूर०
ति हियै निरंतर ध्यास्यां ॥ राज ॥३॥ आ०

दीन दयाल दीन बँधव कै खाना जाद कहासां ॥ तनधन प्रान समरपी प्रभु कों इन पर वेग रिझासां राज ॥ आ० ॥ ४ ॥ अष्ट कर्म दल अति जोरावरतें जीत्या सुख पासां ॥ जालम मोहमारकौ जामें साहस करी भगासां राज ॥ आ० ॥ ५ ॥ ऊबट पँथ तजो दुरगति कौ सुभगति पंथ सँभासां ॥ आगम अरथ तणे अनुसारै अनुभव दसा अभ्यासां राज ॥ आ० ॥ ॥ ६ ॥ काम क्रोध मद लोभ कपट तजि निजगुणसुं लवलासां ॥ विनैचँद सँभव जिन तूठौ आवा गवन मिटासां राज आ० ॥७॥ इति ३ ॥ ढाल ॥ आदरजीव छिमया गुण आदर ॥ एदेशी श्री अभि-

नँदन दुःख निकँदन बंदन पूजन यौग्गजी
॥श्री॥ संवर राय सिधारथा राणी जेहनौ
आतम जातजी प्रान पियारौ साहिब
सांचौ तुही जौ मातनै तातजी॥श्री३॥कोई
यक सैव करै शंकर की कोइ यक
भजै मुरारिजी ॥ गन पति सूर्य उमा
कोई सुमरै हूं सुमरू अविकारजी ॥श्री॥
दैव कृपा सू पामैं लछमी सौ इनभव को
सुखजी ॥ तो तूठां इन भव पर भव में
कदी न व्यापे दुः खजी ॥ श्री ॥ ॥ ४ ॥
जदपी इन्द्र नरिन्द्र निवाजै तदपी करत
निहालजी ॥ तु पुजनीक नरिन्द्र इन्द्र
कौ दीन दयाल कृपालजी ॥ श्री ॥ ५ ॥

जब लग आवागमन न छूटै तबलग करां अरदासजी॥संपति सहित ग्यान समकित गुण पाऊं दृढ विसवासजी॥श्री॥८॥अधम उधारन वृद तिहारो जोवो इण संसार जी ॥ लाज विनैचंद की अब तौनैं भव निधि पार उतार जी श्रीइति ॥

ढाल । श्री सीतल जिन साहिबाजी ॥ एदेशी । सुमति जिणेसर साहिबाजी ॥ मगरथ नृप नो नंद ॥ सुमंगला माता तणोंजी तनय सदा सुखकंद॥ १ ॥प्रभू त्रिभवन तिलोजी ॥

आंकडी

सुमति सुमति दातार ॥ महा महि मानि लोजी ॥ प्रणमूं बार हजार ॥ प्रभु

त्रिभुवन तिलोजी ॥ २ ॥ प्रभू० ॥ मधुकर नौ मन मोहि यौजी ॥ मालती कुसम सुवास ॥ त्युं मुजमन मोह्यो सही ॥ जिन महिमा कहि नजाय ॥ ३ ॥ प्रभु० ॥ ज्यूं पंकज सूरज मुखीजी विकसै सूर्य्य प्रकाश त्युं मूज मनडो गह गहै ॥ कवि जिन चरित हुलास । ४। प्रभु० ॥ पपइयो पीउ पीउ करेजी ॥ जान वर्षारितु जेह । त्युं मोमन निस दिन रहै ॥ जिन सुमरन्न संनेह । ५ । प्रभु ॥ काम भोगनी लालसा जी ॥ थिरतान धर मन्न ॥ पिण तुम भजन प्रतापथी ॥ दाझै दुरमति वन्न ६ ॥ प्रभु० ॥ भवनिधि पार उतारियजी । भगत वच्छल भगवान ॥ लिनेचं दकी

बीनती मानौ कृपानिधान । ७ ।प्रभु
इति ॥

ढाल ॥ सांम कैसै गज को फंद छुडा
यो एदेशी ॥ पदम प्रभु पावन नाम ति
हारो॥ टेर ॥ जदपि धीवर भील कसाई
अति पापिष्ट ज मारो ॥ तदपि जीव
हिंसा तज प्रभु भज ॥ पावैं भवदधि
पारो ॥ १ ॥ पदम ॥ गो ब्राह्मण प्रमदा
बालक की ॥ मोटी हित्याच्यारो ॥ तेह
नो कारण हार प्रभु भजनै ॥ होत हित्या
सुं न्यारो ॥ २ ॥ पदम ॥ वेश्यां चुगल
चंडाल जुवारी ॥ चोर महाभट मारो ॥
जो इत्यादि भजै प्रभु तौने ॥ तौ निबृतै
संसारो ॥ ३ ॥ पदम०॥ पाप पराल को

पुंज बन्यौं अति ॥ मानू मेरु आकारो ॥
ते तुम नाम हुताशन सेती ॥ सहज्या
प्रजलत सारो ॥ ४ ॥ पद्म॥परम धर्म
को मरम महारस॥ सो तुम नाम उचारो
यासम मंत्र नहीं कोई दूजो ॥ त्रिभुवन
मोहन गारो ॥ ५ ॥ पद्म ॥ तो सुमरण
बिन इण कलजुग में । अवरन को आ-
धारो ॥ मैं वलि जाऊ तो सुमरन पर ॥
दिन २ प्रीत बधारो ॥ ६ ॥ पद्म०॥
कुसमा राणी को अंग जात तुं ॥ श्रीधर
राय कुमारो ॥ जिनचंद कहै नाथ निरं-
जन जीवन प्रान हमारो ॥ ॥ ७ ॥ इति
ढाल प्रभुजी दीन दयाल सेवक
सरणा आयो एदेसी प्रातष्ट सैन नरेश्वर
कोसुत पृथवी तुम महतारी ॥ सगुण

सनेही साहिब सांचौ ॥ सेवक नैं सुख कारी ॥ १ ॥ श्रीजिन राज सुपास पूरो आस हमारी ॥

आंकडी ।

धर्म काम धन मुक्त इत्यादिक । मन वांछित सुखपूरो ॥ वार २ मुझ विनती ऐही ॥ भव भव चिंता चूरो ॥ २ ॥ श्री जिन ॥ जगत सिरोमणि भगतति हारी॥ कल्प वृक्ष सम जाणु पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर भव भव तुनें पिछाणू ॥ ३ ॥ श्रीजिन ॥ हूं सेवक तु साहब मेरो ॥ पावन पुरुष विग्यानी ॥ जनम जनम जित थित जाऊं तौ पालौ प्रीति पुरानी ।४ श्रीजिन ॥ तारन तरन अरु असरन

सरनको विरदइसो तुम सोंहै ॥ तो सम
दीन दयाल जगत में इन्द्र नरिन्द्र नको
है ॥५॥ श्री ॥ संभूरमणा बडौ समुद्रौं
मैं ॥ सैल सुमेरु बिराजै ॥ तू ठाकुर त्रि-
भुवन में मोटों ॥ भगत कियादुष भाजै
६ ॥ श्री जिन ॥ अगम अगोचर
तूं अविनासी अलष अखंड अरू-
पी चाहत दरस बिनैंचंद तेरो । सत चित
आनंद सरूपी ॥ ७ ॥ श्री जिनराज
सुपास पूरो आस हमारी ॥ इति ॥

ढाल ॥ चौकनी देशी ।

जय जय जगत सिरोमणी हूंसेवकाने
तूं धणी ॥ अब तौसूं गाढी बणी ॥ प्रभु
आसा पूरौ हमतणी ॥ ० ॥ मुझ म्हेर

करो॥चंद प्रभु जग जीवन अंतरजामी॥ भव दुःख हरो ॥ सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी ॥ टेर ॥ चंद पुरी नगरी हती ॥ म्हासैन नामा नरपती तसुराणी श्री लषमा सती ॥ तसु नंदन तू चढती रती ॥ २ मुझ ॥ तूं सरबज्ञ महाज्ञाता॥ आतम अनुभव को दाता ॥ तो तूठां लहीये सुखसाता ॥ धन २ जे जग में तुम ध्याता । ३ । मुझ म्हैर ॥ सिव सुख प्रारथना करसूं ॥ उजवल ध्यान हियेधर-सूं ॥ रसना तुम महिमा करसूं ॥ प्रभु इम भवसागर से तिरसूं ।४।मुझ। चंद चकोरन केमनमें॥गाज अवाजहू वेघनमें॥पिय अ-भिलाखा ज्यों त्रियतनमें त्यों वसियो त

मो चितमन मैं ॥ ५ ॥ जो सूनजर साहि-
ब तेरी ॥ तौ मानों विनती मेरी ॥ काटौ
भरम करम बेरी ॥ प्रभु पुनरपि नाहिं
परू भव फेरी ॥ ६ ॥ मुझ म्हैर ॥
आतम ज्ञान दसा जागी॥प्रभु तुम सेता
मेरी लौ लागी॥अन्य देव भ्रमना भागी
बिनैचंद तिहारो अनुरागी ॥ ७ ॥ मुझ
म्हैर ॥ चंद प्रभु जग जीवन अंतरजामी
भव दुषहरो ॥ इति ॥

ढाल ॥ बुढापो बैरी आवियो हो ॥

काकंदी नगरी भलीहो।श्री सुग्रीव नृपाल
रामा तसु पट रागनी हो ॥ तस सुत
परम कृपाल ॥ १ ॥ श्री सुबिध जिणेसर
वंदिये हो ॥

आँकडी ।

त्यागी प्रभुता राजनी हो लीधौ संजम भार । निज आतम अनुभावथी हो ॥ पाम्या प्रभु पद अविकार॥श्री॥अष्ट कर्म नो राज बीहो । मोहप्रथम क्षयकीन॥ सुध समकित चारित्रनो हो । परम क्षायक गुणलीन ॥३ श्री ॥ ज्ञानो बरणी दर्सना बरनी हौ । अंतराय के अंता ॥ ज्ञान दरसन बलये त्रिहूंहो प्रगट्या अनंता अनंत॥४ श्री।अवा वाह सुख पामीयाहौ । बेदनी करम क्षपाय । अव गाहणा अटल लहीहो । आउ क्षै करनें श्री जिन राय ॥५ श्री० । नाम करम नौ क्षै करोहौ । अमूरतिक कहाय । अगुर लघपणा अनुभव्यौहौ । गौत्र करम मुका

य ॥ ६ श्री। आठ गुणा कर ओलष्या
हो। जात रूप भगवंत। विनैचंदके उ-
रवसौ हो। अह निस प्रभु पुप्पदंत ॥
।७। इति ॥६॥

ढाल ॥ जिंदवारी देशी

श्री दृढरथ नृपतो पिता ॥ नंदा धारी
माय॥रोमरोम प्रभुमो भणी सीतल नाम
सुहाय ॥१॥ जय जय जिन त्रिभुवन ध
णी ॥ करुणा निध करतार ॥ सेठ्यां
सुर तरु जेहवो ॥ बंछित सुख दातार ॥
॥२॥ जय०॥ प्राण पियारो तू प्रभु पति
भरता पति जेम ॥ लगन निरंतर
लग‹ही ॥ दिन दिन अधिको प्रेम

॥ जय०॥३॥सीतल चंदन नीपरें जपता निस दिन जाप ॥ विषै कषायना ऊपनै । मेटौ भव दुखताप ॥४॥जय०। आरत रुद्र प्रणाम थी उपजै चिंता अनेक । ते दुख कोटो मानसी । आपौ अचल बिबेक॥५ जय० ॥ रोगादिक क्षुधा त्रिषा ।सबसस्त्र अस्त्र प्रहार सकल सरीरी दुखहरो ॥ दिलसूं बिरुद्ध बिचार ॥ जय०॥ ॥ ६ ॥ सुप्रसन होय सीतल प्रभू तू आसा बिस-राम ॥ बिनैचंद कहै मो भणी दीजै मु-क्ति मुकाम ॥ ७ ॥ जय जय जिन त्रि-भुवन धणी सेव्या सुरतरू जेहवौ बंछत सुख दातार ॥ जय० ॥ इति १०॥

ढाल ॥ राग काफी देसी होरी की ॥

चेतन जाग कल्याण करन कौ । आन मिल्यो अवसररै ॥ सास्त्र प्रमान पिछान प्रभू गुन ॥ मन चंचल थिर कररे ॥ १ ॥ श्री अंम जिनँद सुमररे ॥

। टेर सास उसास बिलास भजन को ॥ दृढ बिस्वास पकररे ॥ अजपा ध्यास प्रकाश हिये बिच ॥ सो सुमरन जिन बररे ॥ २ ॥ श्री ॥ कंदूप क्रोध लोभमद माया ॥ ए सबही पर हररे ॥ सम्यक द्रष्टि सहज ॥ सुख प्रगटै ॥ ज्ञान दशा अनुसररे ॥ ३ ॥ श्री अंम ॥ झूंठ प्रंच जोबन तन धन अरू ॥ सजन सनेही

घररे ॥ छिनमें छोड चलें पर भव कूँ ॥ बंध सुभा सुभ थिररे ॥ श्री ॥ ४ ॥ मानस जनम पदारथ जिनको ॥ आसा करत असररे ॥ तें पूरव शुकृत करिपायो ॥ धरम मरम दिल धररे ॥ श्री ॥ ५ ॥ बिश्नसेन नृप बिस्नाराणी को नँदन तू न बिसररे ॥ सहजै मिटै अज्ञान अबिद्या मुक्ति पंथ पग भररे ॥ ६ ॥ श्री ॥ तूं अबिकार बिचार आतम गुन ॥ जंजालमें न पररे ॥ पुद्गल चाय मिटाय बिनैचंद ॥ तुं जिन तैन अबरे ॥ श्री इति ॥

ढाल फूलसी देह पलक में पलटें ॥ एदेशी ॥ प्रणमूं वास पूज्य जिन नाय-

क ॥ सदां सहायक तूं मेरो ॥ टेर॥ बि-
षमी वाट घाट भयथानक ॥ परमासय
सरनो तेरो ॥ खल दल प्रबल दुष्ट अ-
ति दारुण चौतरफ दिये घेरौ ॥ तौ पि-
ण कृपा तुम्हारी प्रभुजी ॥ अरियन भी
प्रगटै चेरौ ॥ २ ॥ प्रणमु० ॥ विकट प-
हार उजार विचालै । चोर कुपात्र करै
हेरो ॥ तिण बिरियां करिये तो सुमरण
कोई न छीन सकै डेरौ ॥ ३ ॥ प्रणमु ॥
राजा पातसाह कोइ कोपै अति तकरार
करै छेरौ तदपी तू अनुकूल हूवैतो॥छिन
में छूट जाय केरौ ॥ ४ ॥ प्रणमू० राकस
भूत पिसाच डांकिनी ॥ संकनी भय ना-
वैं नेरौ ॥ दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागै

॥ प्रभु तुम नाम भज्यां गहरौ ॥ प्रणमू ॥ ५ ॥ बिस्फोटक कुष्टा दिक संकट ॥ रोग असाध्य मिटै देहरौ ॥ विष प्यालो अमृत होय प्रगमें ॥ जो बिस बास जिनंद कैरो ॥ ६ ॥ प्रणमु० ॥ मात जया वसु नृप के नंदन ॥ तत्व जथारथ बुध प्रेरौ वे कर जोरि बिनैचंद विनबे ॥ बेग मिटै मुझ भव फेरौ ॥ ७ ॥ प्रणमु वास पूज्य जिन नायक सदां सहायक तुम मेरौ ॥ १२ ॥ इति ॥

ढाल अहो शिवपुर नगर सुहावणो ।

एदेशी ॥ विमल जिणेसर सेविये ॥ थारी बुध निर्मल होजायरे॥जीवा विषय वि-

कार बिसार नै ॥ तूं मौहनी करम खपा-
येरे ॥ १ ॥ जीवा० ॥

आँकडी

सूषम साधारण पणौ ॥ परतेक ब-
नास पती मांयेरे ॥ जीवा०॥ छेदन भेद
ा तैसही ॥ मर मर ऊपज्यौ तिण काय-
॥ जीवा ॥ २ ॥ काल अनंत तिहाग-
यौ ॥ तेहना दुख आगमथी संभालरे॥
ीवा० ॥ पृथ्वी अप्प तेउ वायुमैं ॥ रह्यौ
संख्या २ तौ कालरे ॥ जीवा० ॥ ३ ॥
ेन्द्री सूं बैंद्रीथयौ ॥ पुन्याइ अनंती
ारे ॥ जीवा० ॥ सनीपचैंद्री लगें पुनवं-
ा ॥ अनंता २ प्रासधरे ॥ जी

देव नरक तिरजंच में ॥ अथवा मानस भवनीचरें ॥ जीवा ॥ दांन पर्णे दुष भोगव्या । इणपर चारों गति बीचरे ॥ जीवा ॥५ अबके उत्तम कुल मिल्यो ॥ भेट्या उत्तम गुरू साधुरे ॥ जीवा ॥ सुणा जिन बचन सनेहस ॥ समकित ब्रत आराधेरे ॥ जीवा ॥ ६ ॥ पृथ्वी पति कीरति भानु को ॥ सामाराणी को कुमाररे जीवा० ॥ बिनैचंद कहैते प्रभू ॥ सिर सेहरो हिवडारो हाररे ॥ जीवा ॥ ७ ॥ इति ॥ १३ ॥

ढाल॥ बेगा पधारौरे म्हलथी

एदेशी ॥ अनंत जिनसर नित नमो ॥

अद्भुत जोत अलेष ॥ ना कहिये ना देखिये जाके रूप न रेख ॥ १ ॥ अनंत॥ सुखमथी सुख्यम प्रभू चिद्दानंद चिद्रूप । पवन सबद्द आकासथी ॥ सुख्यम ज्ञान सरूप ॥२॥ अनंत ॥ सकल पदारथ चिं-तवु ॥ जेजे सुक्षम जोय ॥ तिणथी तु सुक्षम महा ॥ तो सम अवर न कोय ॥ ॥ ३ ॥ अनंत ॥ कवि पंडित कहरथकै ॥ आगम अर्थ बिचार ॥ तौ पिण तुम अनुभव तिको ॥ न सकै रसनां उचार ४ ॥ अनंत ॥ प्रभुने अ सुख सरस्वती देवि आपै आप ॥ कहि न सकै प्रभु तुम अस्तुती ॥ अलख अजपा जाप ॥ ५ ॥ अनंत ॥ मन बुध वांणी तौ वि-

खै ॥ पहुंचे नहीं लगार । साखी लोका लोकानि ॥ निरबिकलप निराकार ॥ ६। अनंत ॥ मातु जसा सिंहरथ पिता ॥ तसु सुत अनंत जिनंद ॥ बिनैचंद अब ओलख्यो साहिब सहजा नंद ।७। अनंत । इति ॥ १४ ॥

ढाल आज नहैं जोरे दीसै नाहलो

एदेशी॥धरम जिणेसर मुज हिवडै बसो प्यारो प्राण समान ॥ कबहूं न बिसरूं हो ॥ चितारूं सहीं ॥ सदा अखंडत ध्यान ॥ १ ॥ धरम०॥ ज्यूं पनिहारी कुंभ न बीसरे ॥ नट वो चरित्र निदान॥ क न बिसरै हो पद मनि पिवुमणी

जननी तणौ ॥ अंग जात अभिराम ॥ विनैचंद्र नैरेवल्लभ तूं प्रभु सुध ॥ चेतन गुण धाम ॥ ७ ॥ धरम जिण० ॥ १५ ॥ इति ॥

ढाल ॥ प्रभुजी पधारो हो नगरी हम तणी एदेशी ॥ वासु सैन नृप अचला पटरानी ॥ तसु सुत कुल सिणगार हो सोभागी जनमति संति करी निजदे-समें ॥ मरी मार निवार हो ॥ १ ॥ सो भागी० ॥ संत जिनेसर साहिब सोलमो ॥

आंकडी

संति दायक तुम नाम हो ॥ सोभा-गी ॥ तन मन बचन सुधकर ध्यावता ॥

पूरै सघली आसहो ॥ २ ॥ सोभागी ॥
विघन नथापे तुम सुमरन कीयां॥ नासै
दारिद्र दुखहौ ॥ सोभागी०॥ अष्ठ सिद्ध
नव निद्ध मिलै ॥ प्रगटै सकला सुक्ख
हौ ॥ ३ ॥ सोभागी ०॥ जेहने सहाइक
सेंत जिनंद तुं ॥ तेहनै कुमीयन कायहो
सोभागी ॥ जेजे कारज मन में ते वढे
ते सफला थाय हो । सोभागी०॥ ४ ॥
दूर दिसावर देश प्रदेश में ॥ भटके भो-
ला लोक हो ॥ सोभागी ॥ सानिधका-
री सुमरन आपरो ॥ सहजे मिटै सोकहो
॥ ५ ॥ आगम साख सुणी छै एहवी ॥
जो जिण सेवक होय हो॥ तेहनि
पूरै देवता ॥ चौसठ इन्द्रादिक

॥ ६ ॥ सोभागी ॥ भव भव अंतरजामी
तुम प्रभु ॥ हमने छै आधार हो ॥ वेकर
जोर जिनैचंद विनवैआपौ सुख श्री कार
हो ॥ सोभागी ॥ ७ ॥ इति ॥

ढाल रेखतो ॥ कुंथु जिण राज तू
ऐसो ॥ नहीं कोई देवता जेसो ॥

टेर। त्रिलोकी नाथ तूं कहिये ॥ हमारी
बांहदृढ गहिये ।१।कुंथु०॥भवो दधि डूब
तो तारै ॥ कृपा निधि आसरो थारौ ॥
भरोसो आपको भारी । विचारो विरद
उपगारी ॥ २ ॥ कुंथु० ॥ उमाहौ मिल
न कौ तौसै ॥ नराखौ आतरो मोसै ॥
सी सिधि अवस्था तेरी ॥ तिसी चेत

न्यता मेरी ॥ ३ ॥ कुंथु० ॥ करम भ्रम
जाल को दपट्यौ ॥ विषे सुख ममत में
लपट्यौ । भ्रम्यौ हूं चिहूं गति माहीं ॥
॥ उदैकर्म भ्रमकी छांहीं ॥ ४ ॥ कुंथु ॥
उदै को जोर है जौलूं ॥ न छूटै विषे
सुख तेलूं ॥ कृपा गुरुदेवकी पाई ॥ नि-
जातम भावना आई ॥ कुंथु ॥ ५ ॥ अ-
जब अनुभूति उरजागी ॥ सुरति निज
सूर्प में लागी ॥ तुमहिए हम एकतो जा
णू ॥ भ्रम कलपना मानू ॥ ६ ॥ श्री दे-
वी सूर नृप नंदा ॥ अहो सरवज्ञ सुख
कंदा ॥ विनैचंद लीन तुम गुन में । न
व्यापे अविद्या उन में ॥ ७ कुंथु जिन
राज० ॥ इति ॥ १८ ॥

ढाल अलगी गिरानी

एदेशी । तु चेतन भज अरह नाथनें
ते प्रभु त्रिभवन राय ॥ तात सुदरसण
देवी माता ॥ तेहनों पुत्र कहाय ॥ १ ॥
साहिब सीधौ । अरह नाथ अविनासी
सिव सुख लीधौ ॥ बिमल विज्ञान बि-
लासी ॥ २ ॥ साहिब०॥ कोड जतन कर-
ता नहीं पामें ॥ एहवी मोटी माम ॥ ते
जिम भक्ति करि नें लहिये ॥ मुक्ति अ-
मोलक ठाम ॥ ३ ॥ साहिब ०॥ सम
कित सहित कीया जिन भगती ॥ ज्ञान
दरसन चारित्र ॥ तप बीरज उपियोग
तिहांरा । प्रगटे परम पवित्र ॥ ४ ॥ सा-
हिब ॥ सों उपियोगी सरूप चितानंद ॥

जिनवर ने तू एक ॥ द्वैत अविद्या विभ्रम मेटौ ॥ बाधै सुध विवेक । ५॥ साहिब॥ अलप अरूप अखंडित अविचल। अगम अगोचर आपै॥ निर विकलप निकलंक निरंजन ॥ अद्भुत जोति अमापै । ६। साहिब॥ ओलख अनुभव अमृतया॥ प्रेम सहित निज पीजै ॥ हूं तू छोड [illegible] अंतर ॥ आतम राम रमीजै । [illegible] सीधौ ॥७॥ १८ ॥ इति

ढाल लावणी

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी ॥ [illegible]

पर भावती मईया तिनकी कूमारी ॥
मल्लि०

आंकडी

मानी कूंख कंद्रा मांहि ॥ उपना अ-
वतारी । मालती कुसुम मालनी बांछा
जननी उर धारी ॥ १ ॥ म० ॥ तिणथी
नाम मल्लि जिन थाप्यो ॥ त्रिभुवन प्रि-
य कारी ॥ अद्भुत चरित्र तुम्हारो प्रभुजी
वेद धरयो नारी । ॥म० २ परणान काज
जान सज आए । भूपति छः भारी । मि-
हला पुरी घेरि चौतरफ । सैना विस्तारी
॥म०।३। राजा कुंभ प्रकासी तुमपै । वीत-
क बिधसारी । छेंहूंनृप जान करी तो

पर नन । आया अंहकारी । म० ४ । श्री
मुख धीरप दीधी पितानै । रापौ हुशिया-
रा ॥ पुतली एक रची निज आकत ।
थोथी ढकवारी ॥ म० ५ भोजन सर्स भरी-
सा पुतली आजिणा सिखा गारी ॥ भूपति
छहूं बुलाया मंदिर वीच वहू दिनपारि
॥म०६॥ पुतली देख छहूं नृप मोह्या अ
सर वीचारी ॥ ढाका उघार लीनौ पुतल
को॥ भभक्यौ अनवारी ॥ म० ७ दुस्स
दुर्गन्ध सही नहीं जावै उठ्यानृप हारि
तव उपदेश दियो श्रीमुखसूं ॥ मोह द
टारी ॥ म०८॥ महा असार उदारक
ही ॥ पुतली इव प्यारी ॥ संगाकिर्या

कें भवदुखमें नारि नरक बारी ॥म०॥ ६ ॥
नृप छहूं प्रति बोधे मुनि होय ॥ सिधगत
संभारी ॥ जिनैचंद चाहत भव भव में ॥
भक्ति प्रभुधारी ॥ १० ॥ म० ॥ १६ ॥
इति ..

ढाल चेतरे चेतरे मानवी

एदेशी ॥ श्रीमुनि सुब्रत सायबा दीन
दयाल देवां तणा देवरे ॥ तारणा तरणा
प्रभू तो भणी उज्वल चित सुमरूं ॥ नि
तमेवरै ॥ १ ॥ श्री मूनि सूब्रत साहिबा ॥
हूं अपराधी अनादिको ॥ जनमरणना कि-
या भरपुर रै॥लूटिया प्राण छः कायना से
विया पाप अठार करूररै ॥ श्रीमुनि सु-

व्रत साहिबा ॥ २ ॥ प्रगन असुभकर्त्तव्य-
ता ॥ ते हमना प्रभू तुम विचाररै ॥ अध-
म उधारण विरध छै॥सरन आयो अब
कीजियै साररै ॥ श्री मुनि सुव्रत साहि-
बा ॥ ३ ॥ किंचित पुन्य प्रभावथी इणभव
आलखियोजिन धर्म रै ॥निवृतुं नरक
निगोदथी एहवो अनुग्रह करोपर ब्रह्म
रै॥ ४ श्री ॥ साधूपणो नहिं संग्रहो
श्रावक व्रत न कीया अंगीकार रै ॥आ-
दरया तौन अराधिया ॥ तेहथी रुलीयो
हूं अनंत संसार रै ॥ ५ ॥ श्री मुनि सुव्र-
त साहिबा० ॥ अब सम कित व्रत आ
दरयौ॥ तदपि आराधकउतरूपाररै ॥ज-
नम जीतव सफलो हुवै। इणपर वीन

वूं वार हजार रै ॥ ६ ॥ श्री मुनि सुव्रत साहिबा ॥ सुमति नराधिपतुम पिता ॥ धन धन श्रीपद्मावती मायरै ॥ तसु सुत त्रिभुवन तिलक तुं ॥ वंदत विनैचंद सीस निवाय रै ॥ श्री मुनि सुव्रत साहिबा० ॥७॥ ॥ ० ॥ इति ॥

ढाल ॥ सुणियांरे बाला कुटिल मंजारी तोता लेगई ॥

एहेशी ॥ विजैसैन नृप विप्राराणी । ने-मी नाथ जिन जायौ ॥ चौसठ इन्द्र कियौ मिल उत्सव सुरनर आनंद पायोरे ॥१॥

सुज्ञानी जीवा भजलै जिन इक बिस मोश० ॥

आंकडी

भजन किया भवभवना दुकृत ॥ दुख दो भाग मिटजावे ॥ काम क्रोध मद म-च्छर त्रिसना दुरमत निकट न आवरे ॥२॥ सुज्ञानी जीवा० ॥

जीवादिक नव तत्व हीये धर॥ गेय हेय समुझीजै॥तीजी उपादेय उलखाने ॥सम कित निरमल कीजेरे ॥ सुज्ञानी० ३ ॥ ॥ जीवअजीव बंध एतीनूं॥एयजथारथजानै॥ पुन्य पाप आसर्व पर हरिये हेय पदारथ

मानौंरे ॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ संवर मोष नि-र्जरा ये निज गुण ॥ उपादेय आदरियै। कारन कारज समझ भली विधि ॥ भिन भिन निरणा करियेरे ॥ ५ ॥ सुज्ञानी० । कारन ज्ञान सरूपी जीवको॥ कारज क्रि-या पसारो दोनुंको सास्वी सुधअनभव आयोषाज जिहारोरे ।६। सुज्ञानी०। तू सो प्रभू प्रभू सो तू है द्वैत कलपना मेटोरे ॥ ॥७॥ सु० ।।२१॥ इति ॥

ढाल नगरी खूब बणीछैजी ॥ एदेशी श्री जिनमोहनगारोछै॥ जीवनप्राण हमा रोछै॥समुद्र विजै सुत श्रीनेमीसर॥ जादव

कल को टीको॥ रतन कुख धारनी सेवा दवी जेहनो नंद नीको ॥१॥

आँकडी

सुन पुकार पसु की करुना कर जाण्या जगत सुखफीको। नव भव नेह तज्यो जोबन में॥ उग्रसैन नृप धीको ॥२॥ श्री॥ सहस्र पुरुष सों संजम लीधो ॥ प्रभुजी पर उपगारी धन धन नेम राजुल की जोडो॥ महाबाल ब्रह्मचारी ३॥ श्री॥बोधानंद सरूपा नंद में॥ चित एकाग्र लगायो॥ आतम अनुभव दशा अभ्यासी॥ सुकल ध्यान जिन ध्यायो॥ श्री ॥४॥ पूरणानंद

केवलि प्रगटे परमानंद पदपायौ ॥ अष्ट करम छेदी अलख वेसर सहजानंद समा-यो ॥ श्री ॥५॥ नित्यानंद निराश्रय निश्चल निरविकार निर्वाणी निरांतक निरलेप निरामय ॥ निराकार वरणानी ॥ श्री ॥६॥ एहवौ ज्ञान समाधि संयुक्तो ॥ श्री नेमीसर स्वामी ॥ पूरण कृपा विनैचंद प्रभु की अब तै ओलखपामी ॥ ७ ॥ श्री नेमी ॥ २२ ॥ इति ॥

ढाल जीबरे तूं सील तणौ कर संग ॥

एदेशी

आस्व सैननृप कुल तिलोरे बामा देवी नौ

नंद ॥ चिंतामणि चित मैं बसै ॥ तौ दूर टलै दुष द्वंद॥१॥ जीबरै तु पार्श्व जिनै स रवंद ॥ जड चेतन मिश्रत पणौरे ॥ करम सुभा सुभथाय ॥ तै विभ्रम जगकल् पनारे आतम अनुभव न्याय ॥२ ॥जी० ॥ वैमी भय मानै जथारै ॥ सुनै घर बे ताल ॥ त्युं मुरष आतम विषैरे ॥ मैल्यो जग भ्रम जाल ॥३॥ जीबरे० ॥सरप अंधारै रासडीरै रूपौ सीप मझार॥ मृग तृसना अंबुज मृषारे ॥ त्युं आतम संसार ॥४॥ जी०॥ अग्नि बिषै जौ मणि नहींरे॥ सिंहसुसै सिरनाय कुसम न लागै व्योम मेंरे ॥ ज्युंज-

ग आतम माहि ॥५॥जी०॥अमर अजौनी आतमारे ॥ हूं निश्चै तिहूकाल ॥विनैचंद अनुभव जगीरै तू निज रूप संभाल ॥६॥ जीवरे तु पार्श्व जिने सर वंद ॥ २३ ॥ इति ॥

ढाल श्रीनवकारजपोमन रगैं

एदेशी

तुम पितु जनक सिद्धारथ राजा । तुम त्रसलादे मातरे प्राणी । ज्यां सुत जायो गोद खिलायो।वर्धमान विख्यातरै प्राणी १॥श्री महावीर नमो वरनानी । सासन जेहनो जाणारे । प्रा० प्रवचन सार विचा-

रहीयामै कीजै अरथ प्रमाणारे । प्रा । २ ।

श्री महावीर नमो बरणानी ।

सूत्र विनय आचार तपस्या । चारप्रकार समाधिरे । प्रा० । ते करिये भवसागर तिरिये । आतम भाव अराधिरे । प्रा० । ३ ।

श्री महावीर नमो बरणानी ।

ज्यों कंचन तिहूंकाल कहीजै । न नाम अनेकारे । प्रा० त्यों जगनाम चराचर जोंनी । है चेतन गुन एकारै प्रा० ।४। श्री ।

अपणो आप विषै थिर आतम । सोहं हंस कहायरे । पा० ।

केवल ब्रह्म पदारथ परचे पुदगल भरम मिटावरे ॥ प्रा० ॥ श्री० ॥५॥

सवद रूप रस गंधन जामें ना सपरस तप छाहिरे ॥ प्रा०॥

तिमर उद्योत प्रभा कछु नाहीं आतम अनुभव माहिरे ॥प्रा० ॥ श्री० ॥

सुष दुष जीवन मरन अवस्था ऐ दस प्रान संगातेर ॥प्रा० ॥

इनथी भिन्न विनैचंद रहिये ॥ ज्यौं जल में जल जातरे ॥ प्रा० ॥७॥

श्री महावीर नमो वरनाणी ॥ २४॥ इति

॥ कलश ॥

चौबीस तीरथ नाम कीरति गावतां मन गह गहै ॥ कुंमट गोकुलचंद नन्दन जिनै चंद इमपर कहैं ॥ उपदेश पूज्य हमीर मुनि को तत्व निज उरमे धरी ॥ उगणीस सौ छः के छमच्छर चतुर्विंशति स्तुति इम करी ॥ १ ॥

* इति *

दो० विद्या सुखकर मूल है जीवन प्राण अधार ।
प्रेम सहित पढ नित लहौ परमानंद विहार ॥

विदित हो कि " सभा " में निम्न लिखित पुस्तकें विक्रियार्थ प्रस्तुत है ॥

हिंदी.		डांक
१ स्तवन तरंगिणी प्रथम भाग	-)	)॥
२ स्तवन ,, दूसरा भाग	-)॥	)॥
३ श्रीप्रदेशी चारित्र	-)	)॥
४ सामायिक सूत्र	)॥	)॥
५ अमर भ्रमोच्छेदन	)॥	)।
६ चौबीसी पद	-)	)॥
७ जैनधर्म के नियम	)॥	)॥
८ पीताम्बरी पराजय		)॥।

पता—पुस्तकाध्यक्ष
साधुमार्गी जैन उद्योतिनी सभा
मानपाडा आगरा.

संसारमें सुख कहां है?

प्रथम खंड.

प्रसिद्धकर्त्ता
वाडीलाल मो. शाह
अधिपति 'जैनसमाचार'
अमदावाद.

'जैन समाचार' पत्रकी सन १९११ की दुसरी बक्षीस.

‘ सुविचार-माळा ’—मणका ५ वा.

संसारमें सुख कहां है?

खंड १ ला.

प्रयोजक,

वाडीलाल मोतीलाल शाह

सम्पादक, ‘ जैन समाचार ’ तथा ‘ जैन हितेच्छु. ’

अहमदावाद.

प्रथमावृत्ति—प्रत १५००

January, 1911.

मूल्य ०-४-०

समर्पण.

संसारमें सुखही सुख भरा हुआ होने पर भी स्वार्थमय विचार और ' अश्रद्धा ' रूपी राहु उसके प्रकाशको रोक कर अपनी दुःखमयी अंधेरी छाया मनुष्यके हृदय पर डालता है; जिन महात्माओंने उस राहुका मस्तक काट सम्पूर्ण विश्वमें सुखका उजेला ही उजेला प्रकट कर दिया,—उन्हींकी कृपाका यह छोटासा फल—उन्हींकी महान आत्माको समर्पित है ।

उपोद्घात.

प्रिय पाठक! जो ज्ञान अनादि समयसे अलग २ जीभ और कलमों द्वारा अलग २ रूपमें प्रकट होता आया है और अनन्त समय तक प्रकट होता रहेगा, उस ज्ञानका एक किरण मुझे जिस किसी महानुभावके मुखसे-जिस किसी साधनसे-जिस किसी स्फुरणसे जिस रूपमें प्राप्त हुआ है उसे वैसेही रूपमें आपके साम्हने रक्खा है। इसकी नवीनताके बारेमें मैं कुछ हक्क कायम नहीं करता और न यह जिद करता हूं कि यह उत्तम रूपसे प्रकट किया गया है। तुम्हे ही जो यह अनुकूल जान पडे तो अपने हृदयमें रख लेना, नहीं तो खुशीसे इस किरणके आडे हृदयके किवाड बंद कर लेना। पसंद करना न करना तुम्हारे ही सिर रखता हूं। परन्तु जो तुम्हें इस किरणसे कुछ भी तसल्ली मिले, कुछ भी तुम्हारे हृदयमें तेज पैदा करे, इसके स्पर्शसे तिलमात्र भी तुम्हारी चिन्ता मिटे और तुम्हारे अप्रिय संयोग अदृश्य हो जाय-दूर छूट जाय तो, ओ प्रिय पाठक! तो इस पर अमल कर दूसरे किरणकी याने दूसरे भागकी प्राप्ति होनेकी इच्छा करना।

दूसरा भाग छप रहा है.

यह प्रथम भाग, प्रथम गुजराती भाषामें बनाया गया था, जिसकी आज तक तीन आवृत्तिकी ५००० प्रतका बिना मूल्य प्रचार किया गया. फिर केइ महाशयोकी सलाहसे इसका हिंदी भाषांतर प्रसिद्ध करनेका विचार हुआ. मेरे परममित्र श्रीयुत 'भारतवासी' जो इतना आत्मार्थी है कि अपना नाम तक जाहिर करनेमें मुझे मना करता है, उसने यह अनुवाद हिंदीमें कर भेजा, मैं अत्र उसका आभार मानता हूं. वा. मो. शाह.
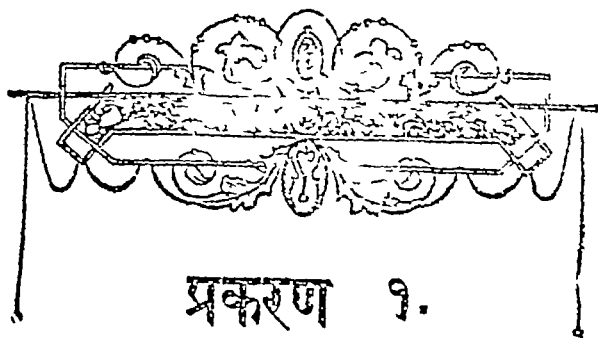
प्रकरण १.

दुःख.

धि, व्याधि और उपाधि—या एकही शब्दमें कहें तो दुःख यह जिन्दगी की छाया है। जहां जीन्दगी है, वहां ये भी हैं ही। ऐसा एक भी हृदय नहीं है जिसमे दुःखका डंश न लगाहो, ऐसा एक भी मस्तिक नहीं है जिसने चन्ताके काले पानीमें गोते न खाये हो। ऐसी एक भी आंख नहीं है जिसने गरम गरम आसू न वहाया हो, और न एक भी ऐसा घर ही है जिममें आधि व्याधि उपाधि रूपी शस्त्रोंको लेकर मृत्युदेवने प्रवेश न किया हो। प्रत्येक थोड़ा या वहुत दुःखकी बेड़ियो ने अपशन जकड़ा हुआ है मात्रके मस्तक पर संकट घूम रहे है।

इन घूमते हुए संकटोंसे सर्वथा बचने के लिये या उनका प्रभाव कम करने के लिये स्त्री और पुरुष नाना भांति की युक्तियां लड़ाते हैं और अंधे मनुष्यों की भांति उन युक्तियों के पीछे हो लेते हैं। वे सोचते हैं कि ये मार्ग उन्हें अक्षय सुखतक पहुचा देंगे। शराबी या रंडीबाज जैसे शारीरिक मौज में ही रमा करते हैं वे तक उस कृत्यको सुखके खियालसे ही करते हैं। द्रव्य या कीर्ति के लिये मर मिटने वाला मनुष्य भी सुखके लिये ही द्रव्य या कीर्ति को संसार के प्रत्येक पदार्थसे मूल्यवान गीनता है। और धार्मिक अनुष्ठान मे चित्तको लगाने वाले मनुष्य भी सुखके लिये ही धार्मिक अनुष्ठान करते हैं।

इन सब मनुष्यों को, जिस सुखको यह ढूंढते थे वह सुख कुछ आता हुआ भी जान पडता है, जैसे शराबकी बेहोशीमें सब दुःख भूल कर शराबी आदमी अपने आपको बादशाही सुखमें आया हुआ मानता है वैसे ही थोडी देरके लिये इनका आत्मा भी अपने आपको आनन्द भोगता हुआ मानता है। परन्तु अफसोस! आखिरमें व्याधि आ पहुंचती है और चिन्ता, लोभ, संकट आधि रूपसे उस अदृढ आत्मा पर एकाएक टूट पडती है, जिससे उसका माना हुआ सुखका 'चीर' फट फटाकर 'चिथडा' हो जाता है!

इसतरह शारीरिक आनन्द पर दुःखकी बडी भारी तलवार रही है; जो ज्ञानरूपी ढालसे हीन आत्मापर पड़कर उसका पहुंचाये बिना नहीं रहती।

बच्चे, जवान होना चाहते हैं, और जवान, बचपनके सुख चले जाने के निसासे डालते हैं। गरीब मनुष्य निर्धनता की हथकड़ी से हाथ नहीं चल सकनेसे रोता है; तो धनवान 'कहीं गरीब न हो जाऊं ?' इस विचार से दुःखी रहता है और सुखकी भ्रमभरी छाया के पीछे पीछे सारी पृथ्वीको खोजते फिरते हैं। कितनी ही बार इस जीव का ऐसा जान पड़ता है कि अमुक धर्मका पालन करने से अथवा अमुक दर्शन के अभ्यास से या अमुक विचार के उत्पन्न होनेसे निर्भय सुख और शान्ति उसे मिल चुकी' परन्तु दूसरे ही क्षणमें कोई बड़ी भारी लालच आ पहुंचती है और वे समझाती है कि यह धर्म (मत) यह दर्शन या यह विचार लालचोंको रोकनेकी सामर्थ्य देने में परिपूर्ण नहीं है। और वह धर्म (मत) वह दर्शन या वह विचार--जिसमें कई वर्षों तक आनन्दपूर्वक मनुष्य रहा हो--निष्फल हो जाता हैं.

तो क्या दुःख और चिन्तासे बचनेका कोई मार्ग है ही नहीं ? क्या ऐसे कुछ साधन ही नहीं है जिससे दुःखके बद्दल बिखर जांय ? क्या नित्य सुख, नित्य निर्भयता और नित्य शान्ति ये मूर्खों के झूटे स्वप्न मात्र हैं ? नहीं, कभी नहीं। दुःखका हमेशाके लिये दूर कर देनेका मार्ग है। दर्द निर्धनता और अप्रिय संयोग इस तरह दूर किये जा सकते हैं कि फिर इनके आनेका कामही नहीं। अखण्ड और अनन्त सुख शान्ति के मिलने की युक्ति है ही। जो मार्ग हमें इस सुखको प्राप्त करा सकता है उसका प्रारम्भ 'दुःख की प्रकृति समझने की शक्ति' की नजदीकमें होता है।

दुःख है ही नहीं ऐसा कहना या दुःखकी ओर आँखें बन्द कर लेना यही काफी नही हैं। दुःखको समझना चाहिए। दुःख दूर करनेके लिये परमात्मासे प्रार्थना करना ही काफी नहीं है। परन्तु दुःख क्यों आया और वह तुम्हें क्या शिक्षा देता है–क्या पाठ पढाता है यह ढूंढ निकालना चाहिए। हथकडी पडे हुए हाथ देखकर क्रोध करना–चिड चिड करना या रोना चिल्हाना किसी कामका नहीं है। परन्तु क्यों और किस प्रकारसे हथकडी पडी इस बातका तुम्हें विचार करना चाहिए। इस लिये हमे चाहिए कि हम स्वयं अपनी परीक्षा करें–हम स्वयं अपने आपको पहचानना सीखें. प्रयोगशाला रूपी इस संसारमें हमें एक क्रोधी बालकके जैसे न बनकर सीखनेकी इच्छा रखना चाहिए। क्या सीखनेकी इच्छा ? तो मैं कहुं कि जो जो बनाव बनते हैं वे सब धीरे धीरे अनुभव दे कर उच्च दशामें लानेके लिये ही बनते हैं और अन्ततः वे पूर्ण दशाको पहुंचा देते हैं। इस लिये यह अवश्यक है कि, बनाव हमें क्या सिखाते हैं इसके जाननेकी पूरी पूरी दरकार रक्खें। क्योंकि जब हम दुःखको अच्छी तरह समझ लेंगे तब हमें भली भांति मालूम हो जायगा कि दुःख कोई हद बिनाकी शक्ति नहीं है परन्तु मनुष्य पर आती हुई एक क्षणभरकी शिक्षा है। और जो सीखनेवाले हैं उन्हें उससे बे हद लाभ होता है। दुःख कुछ बाहरी दृश्य पदार्थ नहीं है; यह तो तुम्हारे अन्तःकरणका 'अनुभव' है। यदि तुम धीरे धीरे दृढतापूर्वक अपने अन्तःकरणको खोजो और सुधारते रहो तो तुम दुःखके 'मूल' और दुःखके 'स्वभाव' को पहचान सकोगे और ज्ञान होने पर तुम उसकी 'दवा' भी जान सकोगे।

सब दुःख साध्य हैं। दुःख मात्रको दूर करनेके उपाय हैं। अत एव कोई दुःख स्थायी नहीं है। दुःखका मूल अज्ञानतामें है। अलग अलग पदार्थोंका स्वभाव और उनके परस्परका संबंध न जाननेके कारण ही दुःख उत्पन्न होता है। और जब तक यह अज्ञान रहता है तभी तक दुःख कायम रहता है। संसारमें ऐसा एक भी दुःख नहीं है जो अज्ञानतासे उत्पन्न न होता हो और हम उससे मिलते हुए पाठको सीखें तो हमें विशेष कुशाग्रता न दे और तत्पश्चात् स्वयं अदृश्य न हो जाय। मनुष्य दुःखमें सदा ही करते हैं इसका कारण यह है कि दुःख जो पाठ सिखाने को आता है मनुष्य उसे सिखने की परवा नहीं करते।

'दुःख' अंधेरा है और सुख प्रकाश है इस कथन कुछ अनुचित नहीं है, क्यों कि प्रकाश सदा ही विश्वपर रेलमपेल पड़ता है और अंधकार एक छोटे पदार्थसे पड़ी हुई परछांइ मात्र है। प्रकाशकी हद नहीं, अंधेरेकी हद है, अथवा यों कहें कि अंधेरा बेहद प्रकाशमें एक क्षुद्र चीजकी परछाई मात्र है। इसी तरह 'परमसुख' एक ऐसा तत्व है जो विश्वमें खूब छा रहा है और 'दुःख' उस बेहद सुखमें अहंकार से पड़ी हुई एक तुच्छ परछाई है। जब हम कहते हैं कि रात पड़ गई उस समय चाहे जितना ज्यादा अंधेरा क्यों न हो तो भी अंधकारका विस्तार कितना? हम अपने भूगोलका आधा हिस्सा ही अंधकारसे आच्छादित होता है। अपनी पृथ्वीका आधा भाग प्रकाशित रहनेके सिवाय अन्य असंख्य ग्रह प्रकाशित रहते हैं। और पृथ्वीके आधे भागको भी थोड़े समयके बाद प्रकाश मिल जाता है, यह ध्रुव है।

इस बात परसे, हे मनुष्य! यह समझना चाहिए कि जब तुझ पर चिन्ता दर्द दुःख वगैराके बद्दल आ पडे और तू स्वयं थके हुए पैरोंसे ठोकरें खाता हुआ चले, तो तुझे समझना चाहिए कि असीम सुखमय प्रकाश और तेरे पिंडके बीचमें राहुरूपी तेरी स्वार्थ-मयी इच्छायें और मनोकामनायें आडी आ गई हैं। अर्थात् सुख का असीम प्रवाह तुझपे सीधा गिरता है परन्तु तेरी वासनायें –स्वार्थभरी इच्छायें उसके बीचमें आकर कुछ समय तक तेरे उपर परिछाई डालती है कि जिसे तू दुःखके नामसे पहचानता है। जैसे परिछाई डालनेवाला पदार्थ दूर हो सकता है, वैसे ही दुःखरूपी परिछाई डालनेवाली वासनायें भी दूर हो सकती है। और ऐसा होने पर आनन्द और सुखका प्रकाश तेरी आत्मापर अपने आप पड सकता है। जो अंधकारमय परिछाई तेरे पर पडती है उसका डालनेवाला भी स्वयं तूही है; और कोई नहीं। परिछाई कोई वस्तु नहीं है। वह कहीं रहती नहीं है, न वह कहीं से आती है और न वह कहीं जाती ही है। वह मूल वस्तुके साथ देखपडती है और उसके अदृश्य होनेके साथ ही अदृश्य हो जाती है। इसी तरह तेरे दुःख तेरी स्वार्थ भरी इच्छाओंकी परिछाईके रूप हैं:--वे तेरी स्वार्थमयी इच्छाओंके दूर होते ही अपने आप दूर हो जायगे।

परन्तु यहां पर एक सवाल पैदा हो सकता है कि दुःखकी परिछाईमें जाना क्यों चाहिए? तो इसका कारण एक ही है और वह अज्ञानता है। अज्ञानताके कारणही बालक अग्निमें हाथ डाल देता है या सर्पको पकडने दौडता है; परन्तु जब अग्निसे हाथ जल जाता है या सर्पदंश लग जाता है तो फिर वह उस कामको

नहीं करता। उसी तरह मनुष्य अज्ञानतामें दुःखोत्पादक कर्म करने लग जाता है और उसके फल स्वरूप दुःख पाता है। तब कितनेही तो शिक्षा ग्रहण करते हैं कि यह फल अमुक कर्मका फल है। और कितनेक तो कुछ सार ही नहीं समझ सकते। जो कर्म और कर्मफलका सम्बन्ध समझ लेते हैं वे फल भोगते रहने पर भी दुःखी नहीं होते, और जो इस सम्बन्धको नहीं समझते वे बार-बार वैसा ही कर्म करते हैं और फल भोगते हैं। संसार दुःखी ही है इस बातको माननेवाले ऐसे ही लोग हैं। उनकी दशा ठीक उस अंधे कीसी है, जो शहर अंदर जानेके लिये गढकी दीवार पकडकर दर्वाजे तक पहुंच जाता है और दर्वाजा आते पक्क मार खुजलीके दीवार छोडकर खुजाता हुआ दर्वाजेसे आगे निकल जाता है और फिर गढके चक्कर लगाता फिरता है। इसी तरह इस बातको न जाननेवाला मनुष्य कि दुःख अमुक कारणसे हुआ, बार बार वैसे ही कामोंके चक्करमें पडा रहे इसमें सन्देह ही क्या है?

एक मूर्ख विद्यार्थी पाठ याद न करे और मार खाता रहता है; उसी तरह संसारप्रयोगशालामें मिलते हुए अनुभवकी जो हम परवा न करें और दुःख उठाया ही करें तो हम अंधकारकी परिछाईमें--दुःखमें--दरिद्रतामें सडें इसमें क्या आश्चर्य? इस लिये जो मनुष्य यह चाहते हों कि हमें जो दुःख घेरे हुए बैठा है वह दूर हो, तो हमें चाहिए कि हम सांसारिक प्रयोग जो कुछ हमें सिखावे उसे सीखनेके लिये तैयार रहें और इस बातकी परवा न करें कि हमारे लिये क्या अप्रिय है और क्या कठिन?

ऐसा न करे तो हमें चातुर्य, सुख और आनंदकी प्राप्तिकी आशा भी छोड़ देना चाहिए।

एक मनुष्य अंधेरी कोठरीमें जा बैठे और कहे कि प्रकाशका अस्तित्व ही नहीं है, तो क्या उसका कहना सच्चा मान लिया जायगा? प्रकाश नहीं है तो उस छोटीसी कोठरीमें नहीं है, बाहर तो प्रकाश ही प्रकाश है। इसी तरह या तो तुम प्रकाश है ही नहीं ऐसा कहकर सत्यके प्रकाशसे दूर अंधकार और दुःखकी कोठरीमें बैठो अर्थात वहम, स्वार्थ और भूलसे बनी हुई कोठरीमें बैठकर अपने दुःखोंपरसे कुदरत ही दुःखभरी है ऐसा कहो, या भूल स्वार्थ और वहमकी कोठरी को तोड़कर सर्वव्याप्त तेजस्वी प्रकाशमें आनन्द भोगो, दोनोमें जो अच्छा लगे सो करो।

प्रकरणके अन्तमें संक्षेपसे जो प्रकरणका सार कहें तो यह है कि:- दुःख मात्र एक क्षणिक परिछाई है, जो स्वयं हममेंसे ही उत्पन्न होती है। और कोई दुःख अकस्मातकी रीतिसे, क्रोध रूपमें या सतानेके रूपमें नहीं आते; परन्तु वे कर्मके नियमानुसार अमुक रीतिसे ही आते हैं और उनके आनेका कारण हम स्वयं हैं। तथा उन दुःखोंके योग्य ही हम हैं और उनकी हमें जुरुरत भी है इसी लिये वे आते भी हैं। उन २ दुःखोंके सहन करनेसे और उनका तत्त्व समझनेसे हम विशेष उत्तम, विशेष दृढ और विशेष बुद्धिमान बनते हैं। जो यह विचार मनुष्यके मस्तिकमें बराबर जम जायगा और उसके कामोंमें बराबर दिखाई देगा तो वह दुःखको सुखमें परिणत कर सकेगा और भाग्यको अपने हाथका खेल बना सकेगा.
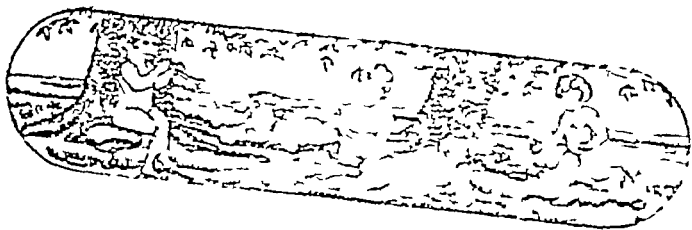
पड़ा रहा और दिवालेको कोसता रहा। जब एक भाई उसी घटनासे विशेष सुखी हो गया तब दूसरा दुःखके हाथका खेल बन गया। इससे वास्तवमें, घटनामें सुख या दुःख देनेकी शक्ति नहीं है परन्तु उसे जिस तरहका लोग स्वरूप देते हैं वैसी ही वह हो जाती है। दिवालेकी घटना दोनों भाइयोंके सम्बन्धमें समान थी और उससे दोनोंको दुःख या तो दोनोंको सुख होना चाहिए था। परन्तु जुदा जूदा जीव पर घटनाने जुदा जुदा प्रभाव डाला है। इससे सिद्ध होता है कि घटनामें अच्छापन या बुरापन नहीं परन्तु जिनपर घटना घटती है उन्हीमें अच्छापन या बुरापन है और वे उसे अपनीसी बना लेते है।

अमुक मनुष्यने मेरे विरुद्ध अमुक आचरण किया और मुझे प्रतीति हुई कि इससे मेरी आबरूमें धक्का पहुंचेगा, मैं पिस जाउंगा या दुःखी हूंगा। इस विचारने मुझे रात दिनके दुःखमें दबा दिया और शरीरको तपा डाला। और इस मान्यतासे जो कुछ होना चाहिए वैसाही हो रहा हो ऐसा मैंने देखा! परन्तु इतनेमें ही सुभाग्य वश एक दिन प्रातःकालमें मुझे स्फुरण हुआ कि 'मैं महावीरका अंश हूं' और विचार आया कि "मुझे मेरे सिवाय दुःखी करनेवाला है ही कौन? घटनाओंकी सामर्थ्य ही क्या है जो मुझे–चैतन्य स्वरूपको--महावीरके अंशको सतावे?" उसी समयसे यह विचार मेरे मस्तिष्कमें से काफूर हो गया कि 'शत्रु मुझे मटियामेल कर डालेगा' और धीरे धीरे मालुम होने लगा कि शत्रु समान आचरण करनेवालोंके भारी भारी प्रयास [illegible] लेप करने जैसे होते हैं।

इस दृढताका परिणाम यह हुआ कि मैं अपने विचारों पर अधिकार रखना सीखने लगा, और आत्माको निरर्थक, हानिकारक हो ऐसी चीजोंको निकाल दे कर उनकी जगहपर आनन्द, शान्ति, प्रेम, दया, सौन्दर्य, अमरता, गाम्भीर्य और समता भरनेका शुरू करने लग गया।

जैसे घटना किसीको सुखमयी प्रतीत होती है और किसीको दुःखमयी, इसी तरह पदार्थ भी किसीको आनन्ददायक जान पड़ते हैं और किसीको अरुचिकारक। पदार्थ स्वयं न आनन्ददायक है, न अरुचिकारक, देखनेवालाही आनन्दकी सुन्दर पोशाक पहना देता है या अरुचिके चींथडे, और इसीसे वे वैसे दिखाई देने लग जाते हैं। जिस फूलको हम अपने पैरोंके नीचे कुचल डालते वही एक कविको सौंदर्यकी मूर्त्ति जान पड़ता है। समुद्रको देखकर जब एक मनुष्य कहता है कि "जहां असंख्य जहाज टूटे हैं और हजारों मनुष्य डूब मरे हैं वही यह जगह है!" तब दूसरा मनुष्य कहता है "अखंड वाद्य बजाने वाला यह एक वाजींत्र है! गानकी महत्ता और गंभीरता सिखाने वाला यह महाशान्त गुरु है! रत्नोंकी निधि है! और असंख्य चमत्कारोंसे भरी हुई यह पुस्तक है!" जहां साधारण आदमीको दुःख-घोटाला देख पड़ता है वहां एक तत्वज्ञानीको कार्य-कारणका पूरा पूरा संबन्ध दिखाई देता है!

जैसे हम घटना और पदार्थको अपने विचारके स्पष्ट पहना देते हैं वैसेही दूसरे मनुष्योंकी आत्माको भी अपने विचारसे

आच्छादित करते हैं। और ऐसा प्रायः कई बार होता भी है। प्रत्येक मनुष्यको कपटी, दरेकको लुच्चा, चाहे जिसे झगडालू, हर किसीको स्वार्थी या व्यभिचारी कहने वाला मनुष्य कदाचित स्वयं ऐसा होता है और अपने में ऐसे २ ऐब होनेके कारण उन्हीं ऐबोंको औरोंमें आरोपित करता है। उसकी पास जैसे बुरे वस्त्र हैं वैसे ही औरोंको भी पहनाता है। अच्छे लावे कहांसे? व्यभिचारी मनुष्य सदा अपनी स्त्री के लिये शंकाशील रहता है, खूनी सदा अपने उपरे फिरती हुई तलवार ही देखता है; सदा दगा करनेवाला दगाके ही स्वप्न देखता रहता है।

इससे विपरीत, प्रेमी पुरुष सर्वत्र प्रेम ही की झांकी किया करते हैं, धर्मात्मा जन सबको धर्मिष्ठ समझते हैं। प्रामाणिक मनुष्य किसीका अविश्वास नहीं करते। जिनके परमतत्त्व लहरें मार रहा हो वे सब जगह परमतत्त्व ही पाते हैं।

प्रकृतिका नियम अथवा कार्य--कारण का सम्बन्ध ऐसा है कि मनुष्य जो कुछ बाहर निकालता है वही भीतर खींचता है और इससे अपने जैसे ही अच्छे या बुरे मनुष्यों की संगति उसे मिलती है। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि “ Birds of a feather flock to-gether” अर्थात् “एकसा पांखवाले पंछी साथही फिरते हैं ” और यह कहावत बिलकुल सच्ची ही है, क्योंकि क्या जड़ पदार्थ और क्या विचार अपने सजातीय पदार्थ और विचारमें शामिल होते हैं--“ समानशीलव्यसनेषु मैत्री ”

हे मनुष्य! तेरी दुनिया तेरी ही परिछाई है। इस वास्ते जो तू दया चाहे तो स्वयं दयालु बन, सत्यकी इच्छा करता हो तो स्वयं सच्चा हो, जो गुण बाहर देखना चाहे उसी गुणको अपने भीतर उत्पन्न कर. मृत्यु के बाद सुखमयी सृष्टि में दाखिल होनेकी वांछा करे तो यों सोच कि यहां--इस भवमें भी सुखमय. सृष्टि है--नहीं हो ऐसा नहीं है। इस सुखपूर्ण सृष्टिमें तू इसी वक्त दाखिल हो सकता है--इस मान्यताको दृढतासे मान, निश्शंक हो कर सम्पूर्ण श्रद्धासे मान कि तेरी दुनियाको सुखमयी बना लेना तेरे ही हाथमें है. ऐसे ही विचार कर, इस विचार पर मनन कर; ध्यान दे। ऐसा करने बाद तेरा आत्मा शुद्धसे शुद्ध होता जायगा और उसे भली भांति अपनी शक्ति और बाह्य घटनाकी और पदार्थोंकी अशक्ति अपने आप आश्चर्य रूपसे मालूम हो जायगी.

प्रकरण ३.

अप्रिय संयोगोंमेंसे बाहर कैसे निकला जावे?
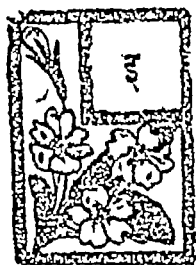
इस बातको हम निश्चय कर चुके हैं कि दुःख और कुछ नहीं है सिर्फ अपने अहङ्कारकी क्षणिक परिछाई है; और इस बातका भी निर्णय कर चुके हैं कि दुनिया एक ऐसा दर्पण है कि जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने ही प्रतिबिम्बको देख पाता है। अब हम आगे बढें और कारण तथा कार्यके नियम को देखें। जो कुछ होता है उस कार्यका कारण होना ही चाहिए; और प्रत्येक कारणका कार्य होना भी निश्चत ही है। कार्य--कारण नियमसे हर कुछ है ही नहीं। छोटेसे छोटा विचार, काम, शब्द या समानी घटनाऐं इस नियमके बाहर नहीं है। "जैसा बोओगे वैस

सूणो " यह कहनावत भी इसी नियमकी पुष्टि करती है। अग्निमें हाथ डालने वालेको दाझना ही पडेगा। इससे बचाव होगा ही नहीं। इसी प्रकार काम, क्रोध, द्वेष, लोभ. ये सब एक प्रकार की अग्नि हैं और इनमें हाथ डालनेवाला भी अवश्य जलेगा.

मनकी इन स्थितिओंको 'व्याधि' भी कहते हैं, कारण कि जब जीव, प्रकृतिके नियमोंका अपमान करता है तभी ये व्याधियां उत्पन्न होती है। इनसे, भीतर अन्तकरणमे अव्यवस्था हो जाती है, बाहर भी दुःख दर्द उत्पन्न होते हैं। इससे विपरीत,–प्रेम, नम्रता, पवित्रता ये कैसी ठंडी लहरें हैं कि जो इनका व्यवहार करते हैं उनपर शान्तिकी वायु छा जाती है और बादमें वहां स्वस्थता, सुलह शान्ति, विजय और सुभगता आ मिलती हैं।

प्रकृति के इस नियमको समझना और उसे मान देना इसीका नाम 'समता' है. समताका यह अभिप्राय कभी नहीं है कि हम जिस स्थितिमें है उसी स्थितिमें संतोष मानकर उसे सुधारनेकी परवा न करें। परन्तु समताका अर्थ यह है कि हम इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि बाहर जितनी घटनायें बनती हैं वह सब भीतरी भावनाके समान ही बनती हैं; इस लिये अनुकूल बनाव के बननेकी इच्छा रखने वालेको आन्तरिक भाव भी वैसे ही अनुकूल–इस प्रकृतिके नियमको समझकर–बना लेना चाहिए और उसीके अनुकूल चलना चाहिए–अर्थात् उत्तम भावना भाते हुए उत्तमाचरण भी रखना चाहिए। इसीको समता कहते हैं।

शक्ति और निर्बलता, इन दोनोंके कारण भीतर ही है, जीत और हार इन दोनोंका रहस्य भी भीतर ही है। भीतर परदे छुटे सिवाय

बाहर भी प्रकाश नहीं होता और ज्ञान हुए बिना कभी शान्ति मिल नहीं सकती।

तुम कहते हो कि हम संयोगोंमें--स्थितिमें बंध गये। तुम अच्छी स्थिति प्राप्त करनेके लिये रोते झींकते हो और अच्छी स्वस्थताके लिये ख्वाहिश करते हो और कभी कभी भाग्यने ऐसा किया कहकर उसे शाप भी देते हो, तो मैं यह तुम्हारे ही लिये लिखता हूं—यह शब्द खास कर तुम्हारे ही लिये हैं, सुनो, और उन्हे अपने अन्तःकरण में सुनहेरी अक्षरोंसे कोर रक्खोः—

" तुम अपनी इच्छाके अनुकूल अपनी बाह्य स्थिति सुधार लेनेको समर्थ हो–शर्त केवल यह है कि, अपनी आन्तरिक स्थितिको तुम दृढतापूर्वक सुधार लो. "

यह मार्ग प्रथम दृष्टिसे तुम्हें ऊजड मालूम होगा इसका मुझे निश्चय है। परन्तु इसका उपाय क्या ? भ्रम और भूल ये दोनोंही प्रथम दृष्टिसे मनोहर जान पडते है। सत्य तो प्रथम दृष्टिसे आदरपूर्वक अभिनन्दन करने लायक नहीं दिखाई देता. ऐसा होने पर भी जो ऊसपर लग जाते हैं, हिम्मत धारण कर उसीके अनुकूल चलते है, वे सुखी होते हैं। कवि लोक सत्यके पुतलेकी आसपास कांटोंकी वाड कल्पित करते हैं कि जिससे उधर जानेको कोई इच्छा न करे; परन्तु जो हिम्मत धर कांटोंकी परवा न कर जाते हैं उनको कांटा (जो कल्पित है) लगता ही नहीं; कि वह कांटे तो " चित्र " मात्र होते हैं।

तुम ध्यानपूर्वक तुम्हारे मनको शिक्षा दो, मानसिक निर्बलता दूर कर दो और आत्माकी अनन्त शक्ति है ऐसा दृढ

विश्वास रख कर उसे खिलने दो तो तुम देख लोगे कि तुम्हारी बाह्य जिन्दगी भी कितनी सुखभरी है । धीरे धीरे सुनेरी तर्कें तुम्हें मिलेंगी और जो तुम उनका विचारपूर्वक उपयोग करोगे तो न केवल अन्तःकरणकी शक्ति ही बढ़ेगी प्रत्युत सच्चे मित्र भी बिना बुलाये आआ कर मिलेंगे, बिना मांगी बाह्य मददें आआ कर प्राप्त होंगी । जैसे लोहचुंबकके पास लोहा अपने आप खिंच आता है वैसे ही सम्पूर्ण सुख आपने आप खिंच आवेंगे ।

मान लो कि तुम निर्धनताकी बेडी में जकडे हुए हो, तुम मित्रहीन अकेले हो और सच्चे जीसे चाहते हो कि तुम्हारे शिर का बोझ कम हो; परन्तु वह बोझ बराबर बढ़ताही जाता है, और तुम्हें मालूम होता है कि मेरे पर विशेष विशेष अंधेरा पड़ रहा है, तुम बड़बड़ाते हो और भाग्यको दोष देते हो, तथा अपने जन्म, मा बाप, या मालिक पर ऐब लगाते हो और कहते हो कि इनके ऐबसे मुझे दुःखी होना पड़ता है। परन्तु सब्र ! तुमारा बड़बड़ाना अथवा चिल्हाना व्यर्थ है, क्योंकि उनमका एक भी कारण तुम्हें दुःख देनेवाला नहीं है । दुःख देनेवाला कारण स्वयं तुममें ही है और जहां 'कारण' है वहीं उसका 'उपाय' भी है ।

तुम जो दुःखकी 'शिकायत' करते हो यही कह देता है कि तुम इस दशाके पात्र हो। प्रत्येक प्रयास और हरतरहकी सुदशाका स्तम्भ रूप जो " आस्था " है तुममें है ही नहीं, इसीसे तुम इस दशाके पात्र हो। जो मनुष्य नियमोंका पालन करता है उसे इस विश्वमें शिकायत करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

घबडाना या बडबडाना यह तो आत्महत्या करने बराबर है। तुम्हारे मनकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि तुम्हारे आसपास की सांकलोंको तुम ज्यादा ज्यादा कडी बनाते आते हो. जीवन सम्बन्धी विचार करने की तुम्हारी रीतिको बदलो, इससे तुम्हारा बाह्य जीवन भी बदल जायगा। श्रद्धा व ज्ञानमें दृढ बनो और उत्तमोत्तम संयोग और तर्कोंके लिये तुम्ह अपने आपको लायक बनाओ।

पहले तो जो कुछ तुम्हारे पास है उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करना सीखो।

क्षण भरके लिये भी ऐसी बुरी कल्पनामें न फँसना कि, छोटे छोटे लाभों को छोड कर एकाएक तुम बडा भारी लाभ पा सकोगे। जो कदाचित् इस प्रकारका बडा भारी लाभ प्राप्त करोगे भी तो वह थोडे ही समयमें नष्ट हो जायगा और जो पाठ छोड दिया था उसे शुरुसे पढना पडेगा। जैसे पाठशालामें पढनेवाले को दूसरी कक्षामें आनेके पहले पहिली कक्षा पास करना पडता है वैसे ही, जो बडे लाभको तुम्ह खूब चाहते हो वह तुम्हें मिले उसके पहले, जो कुछ तुम्हारे पास है उसका उत्तमोत्तम उपयोग कर दिखा देना चाहिए कि हम इस योग्य हो गये। अपने पास जो कुछ हो उसका दुरुपयोग करें या उसकी परवा न करें तो इससे यह सिद्ध होता है कि हम अभी इसके योग्य भी नहीं है। क्यों कि यह छोटी बात भी हमारे हाथसे निकल गई, हम छोटा काम भी न कर सके।

सोचो कि तुम एक झोंपडीमें रहते हो और तुम्हारे आस-पास पडोस ऐसा है कि जो स्वास्थ्य को हानि करे। तुम बडा मकान और स्वास्थ्य देनेवाली जगह की इच्छा करते हो तो तुम्हें ऐसी जगह को योग्य होनेके लिये पहले तो उस झोंपडीको ही जैसे बने स्वच्छ बनाना चाहिये. तुम्हारी शक्ति और साधन के अनुसार उस झोंपडी को खूब स्वच्छ और मनोहर बनाओ. तुम्हारी सादी खुराक खूब मन लगाकर पकाओ और पत्तल आनन्द देने-वाली बनाओ। जो तुम्हारी शक्ति एक सालरीसे भी अपनी झों-पडीको शोभित करनेकी न हो तो हँसमुखपना और आन्तरिक वृत्तिसे, आदर सत्कार रूपी उत्तम बिस्तरसे उसे सजाओ, प्रेम के शब्दोंरूपी गद्दीतकिये लगा दो और धीरज रूपी चित्रोंसे सु-शोभित करो। ऐसी सजावट कभी बिगडेगी ही नहीं।

इस तरह अपनी झोंपडीको भव्य बनाओगे तो तुम इससे भी श्रेष्ट मकानमें रहने योग्य बनोगे और समयपर उत्तम मकानमें रहोगे भी, जो मकान तुम्हारे आनेकी बाट देख रहे हैं। विलम्ब है तो केवल इतना ही कि तुम उनमें रहने योग्य बन जाओ।

सोचो कि तुम मनन और प्रयासके वास्ते ज्यादा समय चाहते हो। तब पहले तो तुम्हे जितना कुछ फुरसतका समय मिले उसका अच्छामे अच्छा उपयोग करो। हाथके समयको खोना और विशेष समयके लिये हाय हाय करना अयोग्य है। "समय नहीं मिलता, समय नहीं मिलता" इस तरह चिल्लानेसे २५ वां घंटा नहीं हो जायगा। एकदा १ घंटा चिल्लानेमें जाता रहेगा और चिंताकी

शान्तिमें भरा गहुंचनेमें जो काम ४ घंटेमें कर सकते थे वह अब ६ घंटे में कर सकोगे, इससे २ घंटेका और नुकसान होगा। इससे ऐसा न कर अपना टाइम टेबल सम्हालो, गपसपमें और निकम्मे तरंगों में या तुच्छ कामोंमें जो समय खोते हो उसे बंद करो। तुम्हारे पास जो समय है उसका अच्छासे अच्छा उपयोग करना न सीखो और ज्यादा समयके लिये 'हाय हाय' करो यह किस कामका?

गरीबी और समयकी न्युनता इन्हें जो तुम दुःख मानते हो तो ये दुःख नहीं है। तुम्हे इनसे कुछ अडचन होती हो तो इसका कारण यह है कि तुमने उन्हे अपनी निर्बलताकी पोशाक पहनादी है। गरीबी और फुरसदकी कमी में तुम जो दुःख देखते हो वे दुःख उनमें नहीं है परन्तु तुममें स्वयं है। इस बातको अच्छी तरह समझ रखना कि तुम जैसा अपना मन बनाओगे वैसा ही तुम्हारा भविष्य बनेगा और इस हिसाबसे तुम्ही तुम्हारे नसीब के घडनेवाले हो। यह अच्छी भांति समझ लोगे और इसके मुआफिक आत्मसुधार करोगे तो दुःखके कारण ही तुम्हे सुख देनेवाले हो जायगे। जब ऐसा हो जायगा तब तुम्ह गरीबीका उपयोग सहनशीलता, हिम्मत और श्रद्धाके सद्गुणोंका विकास करनेमें करोगे। और समयका अभावरूपी दुःखका उपयोग काम जल्दी करने में, निश्चय शीघ्रतासे करनेमें और अलग अलग समयके अलग अलग कामोंमेंसे कुछ न कुछ समय बचा लेनेके काममें होगा। जैसे काली जमीनमें उत्तमोत्तम पुष्प खिलते हैं वैसे ही गरीबीकी कालीभूमिमें उत्तमोत्तम मनुष्यरूपी पुष्प उगते हैं और खिलते हैं।

…ी मुसीबतोंके साम्हने टक्कर झेलना पड़ता है और अप्रिय …योगोंपर जय पाना होता है वहींपर सद्गुण ज्यादा उत्तम …थितिमें होते हैं और अपना प्रभाव ज्यादा दिखाते हैं।

कदाचित ऐसा भी मौका हो कि तुम किसी जालिम, समझ मनुष्यकी नौकरी (सेवा)में हो और तुम्हें मालूम हो कि तुमपर जुल्म हो रहा है तो भी निश्चय समझना कि यह जुल्म भी तुम्हें कुछ न कुछ शिक्षा मिलनेके लिये आवश्यक है। तुम्ह अपने मालिक की निर्दयताके बदलेमें क्षमा और नम्रता बताओ, धैर्य और आत्मनिग्रहके हथियार सदा तैयार रक्खो, उन २ खराब संयोगों का लाभ ले कर उनमेंसे मानसिक और आत्मिक बलोंको बढाओ। …ऐसा करनेसे तुम अपने मालिकके लिये 'गुरु'का काम दोगे, उसे अपने बर्तावपर शरम आयगी और साथ ही साथ तुम आत्मिक गुणको प्राप्त करोगे, कि जो गुण तुम्हारे वास्ते अनुकूल संयोग …उपन्न करेगा और वैसे संयोगोंके लिये तुम्हें योग्य बनावेगा।

"हाय रे इस गुलामीमेंसे कब मुक्त होऊंगा?" इस तरह कभी न बड़बड़ाओ; परन्तु अपनी उत्तम चालसे गुलामीके …के बाहर अपनी दृष्टि रक्खो! दूसरोंके गुलाम बनना प… ऐसी शिकायत करनेके पहले इतना विचार अवश्य करना कि कहीं तुम स्वयं अपने गुलाम तो नहीं बन गये हो? इतना तो अवश्य जानना कि कहीं विकारग्रस्त आत्माके तो तुम गुलाम नहीं हो गये हो? अन्तःकरणमें देखो तो तुम्हें स्वयं जान पड़ेगा कि तुम स्वयं अपने आप पर दयाहीन हो। तुम्हें स्वयं गुलाम जैसे विचार, गुलाम जैसी इच्छायें, गुलाम जैसी आदत और गुलाम जैसी …चाल हैं, इन सबपर जय पाओ; दुरात्माके गुलाम न हो; फिर

किसी मनुष्यका सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हे गुलाम बनावे। तुम आत्माको जीतोगे तो उलटे संयोगो को भी जीतोगे और सब कठाई दूर हो जायगी।

'श्रीमन्त हमपर जुल्म करते है' ऐसी बूम भी मत पाडो। क्या तुम्ह छती पर हाथ रखकर कह सकते हो कि जो तुम स्वयं श्रीमंत हुए होते तो जुल्म नहीं करते ? खूब याद रखना कि कभी न पल्टे ऐसी कुदरतका कायदा ऐसा है कि जो आज जुल्म करता है कल जुल्म सहेगा। और इस कायदेके चंगुलसे बचनेका कोई उपाय ही नहीं है.--

" कडाण कम्माण न मोक्ख अथ्थी "

इस लिये हिम्मत और श्रद्धामें मजबूत बनो। शाश्वत न्याय और शाश्वत सुखकी भावना करो।

मैं--तू--वह ऐसे रूपविषयक या कायिक (Personal) और नाशवंत विचारोंको छोडकर आत्मिक और अमर विचारोंमें चढो। " मुझे कोई सताता है या दुःख देता है " ऐसे भ्रमको ही दूर फेंक दो और अपने आन्तरिक जीवनको सूक्ष्मताके साथ देखकर और उसके नियमोंको समझ कर आत्मसाक्षीसे सीखो कि, तुम्हे वास्तवमें दुःख तो जो कुछ तुम्हारे अंदर है उसीसे ही हो सकता है, औरसे किसीसे नहीं।

दुसरोंको दोष दे कर अपना बचाव न करो, क्यों कि इससे जैसे एक मूर्खी पिता अपने कलेपी पुत्रका पक्ष ले कर उसका अहित करता है वैसे ही) तुम अपने आत्माका बिगाड करते हो।

दुसरों पर दोष लगाना छोडो; स्वयं अपना दोष ढूंढो।

तुम्हारे जिन कामोंमें पवित्रताको लवलेश भी धक्का पहुंचा हो उन्हें सर्वोत्तम न गिनो। ऐसा करनेसे अक्षय स्थल पर मकान बनाओगे, जिस मकानमें हर तरहका सुख और आराम ठीक समय पर अपने आप आ पहुंचेंगे।

गरीबी या अप्रिय संयोगोंमेंसे छूटनेके लिये इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है और वह उपाय 'मैं मैं तू तू'के विचारों को दूर करनेमें समाया हुआ है। क्योंकि दुःख या अप्रिय संयोग उन विचारोंकी परछाईं का ही नाम है। सच्ची लक्ष्मी पानेकी इच्छा हो तो सद्गुणोंसे आत्माको भरो। हृदयकी शुद्धिके विना सच्ची आबादी कभी होना ही नहीं है। कई वार यह देखनेमें आता है कि बेईमान मनुष्य पैसे वाले हो जाते हैं। परन्तु वह दौलत सच्ची लक्ष्मी नहीं है। क्या वे लक्ष्मीवान होने पर भी सच्चा आनन्द--आन्तरिक आनन्द पा सकते हैं ? क्या उनके शरीर और मन गरम (तनदुरस्तीकी हालतसे और ही तरहके) नहीं होते ? इस तरहकी लक्ष्मी (जो सच्ची लक्ष्मी नहीं है) और तुम्हारी गरीबी (हृदयकी श्रीमंताई) में कितना भेद है जो यह जानना हो तो तुम्हारे अन्तरात्मारूपी मठमें-उपासरेमें—मन्दिरमें--मसजिद-में-गुफामें--चर्चमें प्रवेश करो। अहंकारके विचार--नाशवान वस्तुओं के विचारोंको छोड कर अमर और सर्वव्याप्त विचारों में प्रवेश करो। इस पवित्र मंदिरमें प्रवेश करनेसे आप-को भान पडेगा कि मनुष्योंके अच्छे बुरे विचार और प्रयत्नोंका क्या परिणाम होता है। तुम जान सकोगे कि अनीति-मान श्रीमन्तोंको फिर गरीबीमें आना पडेगा और कदाचित

श्रीमंताईमें मर भी जाय तो भी अपनी अनीतिके कडवे फल चखनेके लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पडेगा। चाहे फिर भी वह धनवान हो क्यों न हो परन्तु जब तक दीर्घकालक अनुभव और दुःखोंमेंसे आन्तरिक लक्ष्मी नहीं सम्पादन करें तब तक उन बिचारोंको जन्म मरणके चक्रमें घूमना ही पडेगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो आन्तरिक लक्ष्मी अनुभवसे ही मिलती है। अनुभव होनेके लिये मुसीबतें उठाना ही चाहिए और उन दुःखोंको सीधे सीधे भुगतना आदमीको पसंद नहीं पडता है ऐसा देख प्रकृति देवी उन्हें बाह्य लक्ष्मी देती है, जिसके कारण उन्हें दुःखमें अवश्य पडना होता है और दुःखोंद्वारा अनुभव व अनुभवद्वारा अक्षय सुख मिलता है।

जो मनुष्य देखनेको गरीब है और आन्तरिक लक्ष्मीसे श्रीमन्त है अर्थात् नीतिमान है वह वास्तवमें श्रीमन्त है और गरीबीमें होते हुए भी वह प्रतिदिन 'श्री' की ओर प्रयाण करता है और एक न एक दिन वह उसे वर ही लेगा।

जो चाहते हों कि हम उत्तम दशामें आवें उन्हें एक दम उछल कर उसे न पकडना चाहिए। जहां स्वयं है वहांसे उस दशा तक जिस पर वह पहुंचना चाहता है, दोनोंके बीचमें एक स्थान मुकरर करना चाहिए। ऐसा न करनेसे मूर्ख बन्दरकी तरह उसे बीचमें ही पडना पडेगा। वह स्थान नीतिका है। पहले नीतिको अपना लक्ष्य बिन्दु बनाना चाहिए। क्यों कि वहां पहुंचे बाद उस स्थिति पर पहुंचना बहुत सुलभ हो जायगा। लक्ष्मीके लिये तरसलाना मूर्खता है। दुनियामें इतने ज्यादा पाप होसे

है वह इस एक सीधेसे नियमको नहीं जाननेके कारण ही होते
है कि "नीतिदेवी जबतक लक्ष्मी देवीको समझा बुझा कर तुम्हारे
पास न लावे तब तक लक्ष्मीदेवी तुम्हारे जोरोजुल्मसे तुम्हारे
पास कभी न ठहरेगी"। उसे तुम्हारे पास लानेके लिये तुम्हें अनेक
जुल्म करने पड़ेंगे (और इन जुल्मोंसे भविष्यमें अनेक जुल्म सहन
करनेको आप अपनेको जोखमदार बनाते हो)। तुम्हें अनेक अनर्थ
करने पड़ेंगे इतना ही नहीं लक्ष्मी-ऐसे हाथ आई लक्ष्मी तुम्हे
भांति भांतिसे सतायगी। जबरन लाई हुई स्त्री कभी आराम न
देगी, जरूर वह दूर हट जायगी और संभव है कि विष भी दे देवे।
इसी भांति विधिपूर्वक न ग्रहण की हुई लक्ष्मी घर आने पर भी
तुम्हें पामाल कर देगी इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं है--यह
सृष्टिके नियमकी बात है।

फर्ज करो कि तुम्हें किसी सुन्दर कुमारिकाको देखकर मोहित
हो गये हो, तुम्हें उससे विवाह करना है, क्या वह तुम्हारी
आजीजीसे तुम्हपर फिदा हो जायगी? या तुम्हें अपने
भले गुण, मधुर वाणी, उत्तम रीतिभांति, मोहक लावण्य आदिसे
उसके चित्तको आकर्षित करना पड़ेगा? तुम्हें तो बहुत भी
लगन लग रही हो कि झट घरसे दौड़ उसके घर जा कर पाणि-
ग्रहण कर लूं! परन्तु क्या कभी ऐसे काम बनेगा? नहीं ही;
तुम्हें ऐसी योजना करना पड़ेगी जिससे तुम्हारे गुण, तुम्हारी
खूबी, तुम्हारा रूप, तुम्हारी रीत भांति, उसके जानने में--उसके
देखनेमें आवें। ऐसा करनेसे तो कन्या स्वयमेव तुम्हारी ओर खिंचेगी
और तुम्हारे विवाहका सभी ठीकठाक हो जायगा। ऐसा ही विवाह

दोनोंको सदा प्रेममय रक्खेगा । यही लग्न दृढ लग्न है । और जो, आजकल जैसे अंग्रेजोंमें होता है वैसे करोगे अर्थात् कन्याके पास (लक्ष्मी पास) याचना करते रहोगे तो--उसके पैरों पड प्रेम-भिक्षा करोगे तो कदाचित् वर तुम्हें वह भी ले तो भी उसका परिणाम यह होगा कि थोडे रोज तक हेतका 'नाटक' होनेके बाद हमेशाके लिये क्लेषकी गर्जनाहीहोतीरहेगी !अपने आर्यावर्तकी पूर्वकालकी सती गुण देखकर पतिको ढूंढलेतीथी, न कि पति पत्नीको ढूंढता फिरे; इससे वे कैसी सुशीला होतीथी--कैसे शील पालती थी--पति लिये जीवतक दे डालतीथी यह सबको विदित है । लक्ष्मीके संबंधमें भी ऐसा ही है । लक्ष्मीकी इच्छा रखने वाले मनुष्यको चाहिए कि पहले वह अपने आपका सद्गुणोंसे अलंकृत करे, फिर वह विचक्षण कन्या अपने आप पात्रको ढूंढ लेगी । और सदाके लिये उसके साथ रहेगी । इस लिये आबादीकी इच्छा वाले मनुष्यको चाहिए कि धनप्राप्ति ही अपना लक्ष्य बिन्दु न बनावे, परन्तु निःस्वार्थ परोपकार और जगहित करनेमे लगे रहकर अपनी आत्माका विकास करे । इससे ठीक समय आये आबादी आप ही आ पहुंचेगी ।

तुम्ह कहते हो कि तुम अपने लिये नहीं परन्तु परोपकारके लिये लक्ष्मी चाहते हो । जो लक्ष्मीकी इच्छा करनेमें वास्तवमें यही आशय होगा तो लक्ष्मी आवेगी और फिर आवेगी । और न होने पर भी जो तुम्ह अपने आपको लक्ष्मीके मालिक लक्ष्मीके मुनीम (गुमास्ता) मानोगे तो तुमसे अवश्य

लक्ष्मी आकर भेट करेगी ही, अर्थात् तुम्हें ऐसा समझना चाहिए कि हम कुछ लक्ष्मीके मालिक नही है, जो मन मानी रीति पर अपने स्वार्थमें इसे खर्च कर दें, परन्तु उसके मुनीब है और वह देवी अपने दुःखी पुत्रोंके हितके लिये जो जो काम करना मुझे फरमावे वैसे काम कर उसकी नोंध रखने वाले मात्र हम हैं। तुम्हें मुनीबके योग्य तनख्वाह मिले यह कुछ कम नहीं है। सेठसे मुनीब ज्यादा सुखी है। सेठ कुछ मुनीबसे ज्यादा खाता पीता नहीं है परन्तु मुनीबसे विशेष चिंता भोगता है। मुनीब सेठ जितना ही खाता है, पहनता है, भोगता है, मान पाता है और सेठकी लक्ष्मी अपने हाथसे वापरनेका लहावा लेता है, जिसपर चिंता बिना रह सकता है। इस लिये श्रीमंतोंको अपने हितके लिये ऐसे ही होना योग्य है कि " लक्ष्मीके मालिक न बनकर लक्ष्मीके मुनीब बनें. "

परोपकार के लिये लक्ष्मीकी इच्छा करने वालोंमेंसे बहुतसों का गुप्त आशय ऐसा होता है कि बडाई पावें। तुम्हारे पास जो थोडा बहुत धन हो उसे तो परोपकारमें न लगाओ और ज्यादा धन परोपकार के लिये खर्च करनेको चाहो यह कैसी हास्यजनक बात है? अभी तुम्हारे पास जितने साधन हैं उसका परोपकारमें उपयोग न कर सको तो निश्चय समझना कि ज्यादा लक्ष्मी मिलनेपर तुम्ह बडे स्वार्थी और आत्मश्लाघाके शोकीन हो जाओगे। जो तुम्हारी इच्छा लोकसेवा करनेकी ही है तो लक्ष्मी मिलनेकी बाट देखने की कुछ जुरूरत नहीं है। जो तुम्ह वास्तवमें वैसे ही निःस्वार्थी हो जैसा अपने आपको सोचते हो तो तुम्ह अपनी खुदीको लोक के हितके लिये होम दो। मनुष्य चाहे जितना निर्धन क्यों न

हो वह आत्मत्याग तो कर ही सकता है। जो हृदय कुछ उत्तम काम करना चाहता है वह पैसेकी राह तकताही नही है। वह शीघ्र ही यज्ञकुंडके पास जाता है और उसमें " यह मेरा, यह मेरे इतके लिये है, यह मेरे हानिकर है " ऐसे अहंकारके-मैंपन के बुरे तत्त्वोंको होम देता है और फिर पडोसी व मुसाफिर, शत्रु और मित्र सब पर सुखका निश्वास डालता है।

जैसे कार्य--कारणका संबन्ध है वैसे ही आन्तरिक भलाई और आबादीका संबंध है और इसी तरह आन्तरिक बुराई और निर्धनता का भी संबंध है।

सच्ची 'लक्ष्मी' कोनसी? सद्गुणोंका जो समूह तुम्हारे पास हो वह।

सच्ची 'शक्ति' कौनसी? तुम्हारे पासके सद्गुणसमूहका जो तुम्ह उपयोग करो वह।

तुम्हारे हृदयको शुद्ध करो; इससे तुम्हारा जीवन शुद्ध होगा। काम विकार, धिक्कार, क्रोध, मान, लोभ, दुराग्रह, स्वार्थांधता, ये सब गरीबी और निर्बलताके नाम हैं। विशुद्ध प्रेम, पवित्रता, नम्रता, शांत स्वभाव, सहनशीलता, दया, उदारता, निःस्वार्थता, निर्ममत्व (मैं मैं पन न होना) ये सब लक्ष्मी और शक्ति के (पर्याय वाचक) नाम हैं।

निर्धनता और निर्बलता के ऊपर कहे हुए दुष्ट तत्त्व जैसे जैसे दूर किये जाते हैं वैसे वैसे आत्माके आन्तरिक सर्वशक्तिमान [illegible]द होते जाते हैं। और जो मनुष्य उपरोक्त तत्त्वोंका संपूर्ण

पराजय करता है वह सारे संसारको अपने पैरोंमें नंवाता है ।
महावीर आदि महापुरुषोंके चरित (इस सत्यके प्रमाण) हमारे
साम्हने मौजुद हैं ।

कहाते हुए श्रीमंत क्या आश्रय संयोगोंकी फर्याद नहीं करते ?
इससे समझ लेना चाहिए कि सुखका आधार बाह्य स्थितिपर नहीं
है, परन्तु उसका आधार आन्तरिक स्थितिपर है ।

कल्पना करो कि तुम्ह एक कारखानेके मालिक हो, तुम्हें
हमेशा अपने नोकरोंके लिये 'हाहू' करना पडता है और अच्छे
नोकर नहीं मिलते और मिलते भी हैं तो ठहरते नहीं है ।
इससे तुम्ह मानव जातिपर कंटालना सीखते हो । तुम्ह
पूरा रोजगार देना चाहते हो, तुम्ह नोकरोंको खास तरहकी छूट
देना चाहते हो और ऐसा होनेपर भी नोकर संबंधी तुम्हें
संतोष नहीं मिलता इसका कारण क्या ? इसमें दोष किसका ?
इस सलाहको बराबर ध्यानमें रखना कि तुम्हारी सब चिन्ताका
कारण तुम ही हो । जो तुम्ह सच्चे तौर पर भीतरी दृष्टिसे देखोगे
तो तुम्हें अपनी भूल फौरन मालूम हो जायगी । कदाचित् किसी
तरहका तुम्हारा स्वार्थ होगा, कदाचित् तुम्ह नोकरोंपर वृथा वहम
करते होगे, कदाचित् उनकी ओर तुम्हारा अप्रिय वर्ताव होगा,
इस कारण तुम्हारे हृदयकी जहरीली हवा तुम्हारे नोकरके हृदय
पर असर करती है और यह तुम्हें हानि पहुंचाती है । तुम्ह
नोकरोंकी ओर प्रेमकी भावना भावो; उनके सुखका विचार करो;
उनसे ज्यादा काम न लो । अपने सेठकी सेवा के लिये अपने

शरीरका नाश कर दे ऐसे नोकरका मिलना बडासे बडा भाग्य है, परन्तु अपने ताबेके आदमियों (क्या कुटुम्बी और क्या नोकर) के हितके लिये अपने सुखको भूल जाय ऐसे सेठका मिलना और भी बडे भाग्यकी बात है। ऐसे सेठ को दूना सुख मिलता है और उसके नोकर भी सुखी होते हैं। तुम नोकरकी स्थितिमें हो तब जो काम करना नहीं पसंद करते वह काम नोकरसे लेनेका ख्याल कभी मत रक्खो।

तुम्हारी जिन्दगीको बोझारूप बनाने वाले संयोग चाहे जैसे हो परन्तु उन सबमेंसे निकलनेका एक मार्ग है। और वह यह है कि आत्मशुद्धि और आत्मनिग्रहसे तुम्ह सब अप्रिय संयोगोंको प्रिय संयोगोंमे पलट सकते हो।

तुम्ह कहोगे कि " यह कुदरतका कायदा है कि पूर्व भवके अच्छे बुरे कर्मोका फल भोगना ही पडेगा, फिर आज कितनी ही आत्मशुद्धि क्यों न करें उससे होना जाना ही क्या है ? " परन्तु तुम्हें ध्यानमें रखना चाहिए कि उसी कुदरतका कायदा यह भी कहता है कि " तुम्हारे पूर्वभवके कोई शुभ कर्मोके प्रतापसे ही आत्मशुद्धिकी आवश्यकता समझनेका मौका मिला है तो फिर इसका फल भी क्यों न मिलेगा ? " खराब परिणाम लानेवाले पूर्वभवके कुकृत्योंको आजकी आत्मशुद्धिसे हम क्यों न निर्बल-सत्तारहित कर डालें ? क्या महावीर स्वामीने ' कर्म ' की करनेवाले कुम्हारको " उद्यम " का-पुरुषार्थका-पराक्रमका नहीं पढाया था ?

जो मनुष्य 'अहंता' में लग जाता है वह स्वयं अपना शत्रु है और उसके बाह्य शत्रु भी बहुत खड़े हो जाते हैं और जो 'अहंता' छोड़ देता है वह आत्म मित्र है, वह अपने को बचाने वाला है-अपना ईश्वर है। उसके आसपाससे- पवित्र हृदयके ईश्वरीय किरण सब अंधकारको दूर कर देते हैं। और सब बादल बिखर जाते हैं। जिसने आत्माको जीता उसने विश्व को जीता। 'अहंपने' से दूर होते ही तुम्ह निर्धनतामेंसे निकल जाओगे, दु.खमेंसे निकल जाओगे, चिन्तामेंसे-निसासेमेंसे-कलकलाहटमेंसे निकल जाओगे। अहंपनेका अत्यन्त जीर्ण चींथड़ा अपनी आत्मा परसे हटा दो और उसकी एवज सार्वजनिक प्रेमका चीर पहन लो। ऐसा होते ही तुम्ह अपने भीतर स्वर्ग देखोगे और इस स्वर्गकी परिछाई बहार भी (अपनी जिन्दगीकी घटनाओंमें) देख पड़ेगी।

दुनियामें न्यारी न्यारी शक्तियां हैं। उनमें सबसे विशेष बलवाली शक्तियां ध्वनि रहीत-शान्त हैं-छिपी हुई हैं। ५०० मनुष्य जितना जोर करनेवाला 'बाष्प-यंत्र' याने स्टीम ॲन्जीन ५०० मनुष्य जितनी आवाज नहीं करता और 'विद्युत्यंत्र' का बल उससे भी कम आवाज करता है। यह नियम आत्मापर भी संघटित होता है। जो मनुष्य विशेष शक्तिवाला है वह विशेष मौन रहनेवाला--शान्त होता है। विचारकी महती शक्ति शान्त मस्तिष्कों में ही होती है। इस जोर को जिधर लगाया जावे वैसा ही परिणाम होता है। मुक्ति और पतन इसी जोर के प्रभावसे होता है।

इस पृथ्वीपर रहता हुआ मनुष्य जितना काम सम्पादन

करने योग्य है वह सम्पूर्ण ज्ञान केवल आत्मनिग्रहसे (संयमसे) ही मिल सकता है। आत्मनिग्रहसे मनोबल बढता जाता है। इधर उधर उसका खर्च नहीं होता ' पैसा पैसेको इकट्ठा करता है ' इस नियमानुसार वह बढताही जाता है और ऐसे बढते बढते कैवल्य ज्ञान-सम्पूर्णता मिल सकती है। आत्मनिग्रह की अखीरी सीढी चढनेवालेको कैवल्य प्राप्त होता है।

ज्ञानी पुरुष जो कह गये हैं कि " शत्रु और मित्रकी ओर समभाव रखना चाहिए, अज्ञान और दुष्ट पापीयोंको भी क्षमा करना चाहिये" इसका कारण यही है कि ऐसा करनेसे मनको सूर्यकी भांति स्थिर रक्खा जा सकता है—इधर उधर भटकनेसे रोक कर अपने प्रकाशमें विराजमान रक्खा जा सकता है। इस तरह संचय किये हुए मनोबल, विचार शक्ति और आत्मबल खिला करेंगे और आगे ही बढते रहेंगे। जिससे हम नई नई शक्तियां प्राप्त करते जायगे और अन्ततः सम्पूर्ण शक्तियोंके खजाने रूप केवल ज्ञानको प्राप्त कर लेंगे।

हममे से कई मनुष्य कहते हैं कि " अकाल या महामारी जैसे संकट पापोंके बढनेसे पैदा होते हैं " इस कहनेको हम वहम कह कर हँस डालते हैं, परन्तु यह बिल्कुल वहम ही नहीं है। हिन्दू धर्मगुरु भी कहा करते थे कि बाहर के सब बनाव आन्तरिक भावोंके अनुकूल बनते हैं। वे मानते थे कि प्रजापर यदि कोई आफत आई है या उन्हे विजय मिला है तो यह उसकी बुरी भावनाके कारण ही मिली है। दो राज्योंमे युद्ध हो

तो वह, राजा के या एकाध आदमीके कारण हुआ ऐसा मानना मूर्खता है। 'अहंपने'में लगे रहना, स्वार्थमय या दुष्ट इरादोंमें लगे रहना, ऐसे २ बुरे मार्गपर मनोबलको लगाने वाली प्रजाके इस बलका फलरूप युद्ध होता है। अकाल, प्लेग आदिका भी यही हाल है। विचारोंको बुरे मार्गपर लगाना, मनोबलको हीन मार्गमें व्यय करना इससे आन्तरिक स्थितिकी परिछाईरूप वैसी ही बाह्य स्थिति भी आ मिलती है, जिसे हम अकाल, प्लेग, लाय, लडाई इत्यादि नामोंसे पहचानते हैं। सम्पूर्ण चीजें और बनाव-दृश्योंको अस्तित्वमें लानेवाला---प्रबल शक्तिशाली-शान्त 'विचारबल' ही है। जड पदार्थोंका पृथक्करण करनेसे ऐसा जान पडा है कि वे भी 'विचार' मेंसे ही बने हैं। विद्यालय और कान्फ्रेंस वगैरा पहले विचारमें ही बने हैं, फिर पृथ्वीपर उनके मकान-मंडप आदि बने हैं। ग्रन्थकार, शोधक, कवि, चितारा, शिल्पी आदि पहले 'विचार भूमि'में ही अपना २ काम पूरा करते हैं और फिर उन विचारोंको पदार्थका रूप देते हैं।

जब 'विचारबल' कुदरतके कानूनका अनुसरण कर काम करता है तब वह 'जोडनेका' और 'रक्षा करनेका' काम करता है और कुदरतके कानूनके विरुद्ध काम करता है तब 'तोडनेका' याने नाश करनेका काम करता है।

"विश्वमें सूर्यके प्रकाशकी भांति सुख ही सुख फैला हुआ है, परन्तु दुःख तो हमारी वासनाओंके पडछायांकी भांति आ पडता है" इस मतमें सम्पूर्ण श्रद्धा रखकर चलना यह परमेश्वरके

साथ बातचीत करनेके बराबर–परमात्माकी आज्ञानुकूल चलनेके बराबर ही है। जहां भय, घबराहट, कंटाला, चिंता, संशय, निराशा, खेद आदि हैं वहां मोक्ष नहीं है, मोक्ष की व्याख्या ही यही है--इन स्थितिओंसे और ही प्रकारकी स्थितिका नाम मोक्ष है। अब विचार करो कि ऊपरकी स्थितियां सब 'अहंपने' की औलाद हैं, और जो सुखका सिद्धान्त ऊपर बताया उसमें आस्था न रखनेका परिणाम है। आस्तिक नास्तिक की परीक्षाकी, यही सिद्धान्त, कसोटी है। जो प्रजा आस्तिक बनना चाहे उसे इस सिद्धान्तकी पूजा करना चाहिए और भय चिंता निराशा आदि ऊपर कही हुई स्थितियोंको राजीनामा देना चाहिए। डरने वाला, चिन्ता करनेवाला या खेद करनेवाला मनुष्य 'पापी' है, ये क्रियायें 'पाप' की क्रियायें हैं; क्यों कि 'निश्चय नय'से देखें तो आत्मा आनन्दमय है। तब जब तक उससे भय, दुःख आदि चिमटे रहें तबतक वह 'पाप'में ही है। "भावी मिथ्या नहीं होनेवाला है" यह सर्वज्ञका वचन जो न माने उसे हम नास्तिक कहते हैं। तो फिर 'चिन्ता' करनेवालेको क्यों न 'नास्तिक' कहा जाय? वह क्यों न 'मिथ्यात्वी' गिना जाय? आस्तिकका सिद्धान्त (जो हमें सदा सम्पूर्णतापर पहुंचानेका उद्योग करता है) उसको उडादेनेवाली–उसके प्रभावको धो डालने वाली और इससे हमें दुःखमयी स्थितिमें होम देनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है परन्तु ऊपर कही हुई भीति--संशय--घबराहट आदि स्थितियां ही हैं।

इन स्थितिओंको दूर करनेका नाम ही स्वतन्त्रता है। और स्वतंत्रता प्राप्त करनेका एक ही मार्ग है कि "आत्मिक ज्ञानकी धीरे परन्तु दृढतापूर्वक वृद्धि करते जाना"।

प्रकरण ४ था.
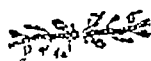
भावना बल.

विवेकपूर्वक आत्मनिग्रह करनेका अभ्यास करनेसे मनुष्य को अपनेमें रही हुई विचार शक्ति अथवा भावना बलके अस्तित्वका ज्ञान होता है। और इसतरह बुद्धिपूर्वक अभ्यास करते करते जब सचमुच आत्मनिग्रहकी शक्ति आ पहुंचती है तब उस विचार शक्ति या भावनाबलका ठीक ठीक उपयोग करनेकी शक्ति भी आ जाती है। मनुष्य जिस प्रकार 'संयम'का पालन करता है अर्थात् आत्मनिग्रह करता है उसी प्रमाणमें वह बाह्य संयोगोंपर काबू करनेमें समर्थ होता है।

कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो सब प्रकारके सुखोंमें होते हुए भी दुःखके उद्गार निकालते हैं। उनके चित्तमें अनेक तरहकी शंका, वहम, भय उठाही करते हैं। ऐसोंको हम 'दुःख बढाने वाले' ही मनुष्य कहेंगे। श्रद्धा और आत्मनिग्रहसे हीन मनुष्य कभी सुखी होगा ही नहीं। वह प्रत्येक संयोगका गुलाम ही होगा। ऐसे मनुष्य दुःख पड़ते २ घड़ाते हैं और कड़वा अनुभव पाकर आखिरमें सीधे रस्तेपर आते हैं।

श्रद्धा और निश्चयः ये दोनोंही जिन्दगीकी मुख्य शक्तियां हैं। ऐसी कोई वस्तु नहा है जो पूर्ण श्रद्धा और दृढ निश्चयसे सिद्ध न हो। प्रतिदिन चुपचाप श्रद्धाका अभ्यास करनेसे अपना विचार बल चोतरसे इकट्ठा हो कर एक जगह जमा होता है और प्रतिदिन मैन वृत्तिसे निश्चयको दृढ करनेसे वह इकट्ठा हुआ 'विचार बल' अथवा 'भावना शक्ति' इष्ट पदार्थकी ओर ही गमन करती है। पहली शक्तिसे बल इधर उधरसे इकट्ठा होता है और दूसरी शक्तिसे वह अमुक लक्ष्यकी ओर गति करता है। इस तरह यह दोनों शक्ति इष्ट कामको पूर्ण करनेमें अत्यन्त उपयोगी हैं।

तुम्हें चाहे जैसी स्थितिमें हो और तुम्हारा कैसा ही धंधा क्यों न हो, परन्तु जो तुम बल, उपयोगिता और विजयका अंश भी चाहते हो, तुम्हें स्वस्थता और मनःशान्ति नामके गुणोंको बढाकर विचार बलको इकट्ठा करना ही चाहिए। कदाचित धंधा ... हो और संकटमें आ पड़े हो, ऐसे समयमें सम्भव है कि

तुम्ह घवरा जाओ और चिडचिडे हो जाओ; परन्तु यह स्मरण रखो कि ऐसी मानसिक स्थितिमे कायम रहनेसे अवश्य बुरा परिणाम होवेहीगा । क्यों कि यह सिद्धान्त है कि " जब चिन्ता छोटी बारीमेंसे प्रवेश करती है तब बुद्धि बडे दर्वाजेसे निकल जाती है ! " चिन्ताको जो चिताके समान गिना है वह ठीक ही है।

तब ऐसी चिन्ताके चंगुलसे बचनेका उपाय क्या ? दुनियामें बहादुरसे बहादुर मनुष्य, अरे स्वयं देव और देवोंके देव भी कृत-कर्म के फल और भवितव्यताको रोकनेमें समर्थ नहीं है, और यदि वह रोकी जा सके तो कुदरतके सब नियम औंधे हो जाय और जगत-में अंधेर ही अंधेर हो जाय। स्वयं तीर्थंकर-पेगंबर और देवोंको भी पूर्वकर्म के कटु फल चखने पडे है। उन देवों के जितनी, चिन्ताके कारण जो दुःख उन्हे रोकनेकी-शक्ति किसीमें है भी नहीं। परन्तु जगतमें ऐसे विरल जन मिलेंगे अवश्य जो चिन्ता की असर न होने दे। बरसात नही रोकी जा सकेगी परन्तु 'वाटर-प्रूफ' कोट पहननेसे और छत्रीको लगानेसे अपने शरीर को भींजनेसे बचाया जा सकेगा । मूसलधार मेह शरीरपर गिरने पर भी वाटरप्रूफ कोट, जितना अवरोध बिचमें आनेसे हमारा शरीर जलके असरसे बच जायगा । इसी तरह दुःख और चिन्ताएं हमारे पर मूसलधार बरसा करे तो भी हम एक ' ओवरकोट '-'वाटरप्रूफ' कोट पहन सकते है, जिससे वे सब हमसे जरा दूर रहे और अपना असर न कर सके। हमारे आसपासके लोग चाहे यही समझा करें कि यह दुःख हमपर पड चुका; परन्तु हम उसे कोटके जाडे पन जितने ही दूर देख पायगे । ऐसा वाटरप्रूफ कोट कौनसा है ? वह कहांसे

लाया जायगा ? तुम्हें जो ऐसे कोट की जुरूरत हो तो लक्ष-पूर्वक सूनो ।

प्रातःकाल या मोडे रातमें किसी एकान्त स्थानमें जाओ अथवा तुम्हारे घरमें की एकान्त कोठरामें बैठो, जहा किसी प्रकार की आवाज खलेल न डालती हो । वहां आसन लगाकर बैठो, जो आसन तुम्हें दुःखकर्ता न हो । शरीर स्थिर होने बाद मगज में से चिन्ताके बनावको धकेल निकाल देने लिये तुम्हारी जिन्दगीमें कोई भी सुखका, आनन्दका, उत्साहका, हर्षका, आल्हादका समय आया हो उसे याद करो । उस आल्हादक बनावकी छबि तुम्हारी कल्पना शक्ति के आगे खडी करो । जैसे जैसे इस आल्हादक बनाव की छवि तुम्हारी कल्पना शक्ति के साम्हने खडी होगी वैसे वैसे इस समय की चिन्तायें तुम्हारे मस्तिष्क में से धीरे धीरे हटती जायगी और थोडेसे समय में तो तुम्ह आनन्दमय बन जाओगे ।

कदाचित् चिन्ताका वेग फिर उथल पडे तो फिर आनन्दमय बनावको स्मरण करो । जैसे विषयानन्द के समय भिखारी या कर्ज-दार या देशनिकाला पाये हुए पुरुषको भी आनंद के सिवाय दूसरा ख्याल ही नहीं आसकता और उस समय रात दिन उसके दिमाग में रमता हुआ निर्धनता मुसीबत या चिन्ताका दुःख अन्तर्धान हो जाता है, वैसे ही पूर्वके आल्हादक बनावको पीछा स्मरण शक्तिमें बुलाने से–उसका चिन्तवन करनेसे तात्कालिक दुःख और चिन्ता का विस्मरण हो जायगा ।

ऐसे चित्तस्वास्थ्य और मनःशान्ति प्राप्त होते ही उसका लाभ [illegible] चाहिए । तुम्हारी इस समय की कठिनता किस तरह दूर

होगी इस वात पर शान्त चित्तसे विचार करो । पहले जो उपाय तुम्हें कठिन मालूम होते थे अब वे सहज जान पड़ेंगे और तुम्हें जो कोई मार्ग सूझेगा वह सच्चा ही सूझेगा ।

चित्तको शान्त करते हुए कदाचित् तुम्हारे दिनपरे दिन चले जावेंगे परन्तु जो तुम्ह हिम्मतके साथ लगे रहोगे तो जुरूर चित्त-शांति प्राप्त करोगे ही । इस चित्तशान्ति के समयमें जो मार्ग तुम्हें सूझ पडे उसे अवश्य ग्रहण करना, उस पर जुरूर चलना । इतना जोर देकर कहने का कारण पूछते हो तो यही है कि दूसरे दिन जब तुम्ह काममें लगोगे तब पहले सूझा हुआ विचार 'हवाई किल्ले बांधना' जैसा, अथवा कठीन, अथवा तुच्छ जान पडेगा, परन्तु तुम दृढ़ रहना, शान्त चित्तसे जो कुछ सत्य देखा था उसी पर चलना; चिन्ताकी परिछाईसे न घिस जाना-खिंच जाना । चित्तशान्ति के थोडे समयमें जो कुछ देखनेमें आता है वह देववाक्य तुल्य जानना। ऐसी एक भी गबराहट नहीं है जिसका उपाय विचारोंको स्थिर कर शान्त बनानेसे न मिल जाय; और ऐसा एक भी चाहने योग्य पदार्थ नहीं है जो आत्मिक शक्तिका ठीक ठीक उपयोग करने से न मिल सके ।

जबतक अपने आत्मामें ऊंडे उतर कर वहां छुपे हुवे शत्रुओं को तुम्ह वश न कर सको तबतक तुम्हारे मस्तिकमें इन बातोंका ख्याल आ ही नहीं सकता कि 'विचारबल' क्या चीज है, उसका बाह्य पदार्थोंके साथ क्या सम्बन्ध है, उसकी जादू कीसी असर क्योंकर होती है और उस असरमें जिन्दगीकी घटनायें कैसे पलट जाती हैं, इत्यादि ।

तुम्हारे मस्तिकमे होता हुआ प्रत्येक विचार एक Force-'शक्ति' है। उस विचारके समान विचार करनेवाले मनुष्योंकी ओर वह दौडेगा और वहांसे पीछा तुम्हारी ओर आवेगा। यदि वह विचार उत्तम होगा तो तुम्हारा हित करेगा और कनिष्ठ होगा तो हानि। विचारबलकी 'दे-ले' चलाही करती है। "स्वार्थमय और हानिकारक विचार एक विनाशकारिणी शक्ति है" इसे खूब समझ रक्खो। ये शक्तियां ऐसेही दूसरे मनुष्योंको जा चौंटती हैं, उन्हें हानि पहुंचाती हैं और वहांसे दूने जोरके साथ लौटकर तुम्हारे चित्तको भ्रष्ट करती हैं। इससे विपरीत शान्त-पवित्र-निःस्वार्थी -प्रेममय विचार उत्तम देवदूत हैं, जो अपने साथ तंदुरूस्ती-सुख-शान्ति-आबादी-आनन्द लेकर दुनियामें उतर आते हैं, वे चिन्ता वगैराको दूर कर, जख्मी हृदयको अमृतसे ठीक कर जवान बना देते हैं।

अच्छे विचार करो, अच्छी भावना भावो, इससे तुम्हारी बाह्य जिन्दगी भी सुखी होगी। आत्मिक शक्ति जैसे रास्तेपर लगाओंगे उसीके मुआफिक, तुम्ह अपनी जिन्दगीको सुखी या दुःखी करसकोगे। तीर्थंकर-पैगंबर-सिद्ध-महापुरूष और पापियोंकी जिन्दगीमें भेद है तो यही है कि पहले कहे हुवे महात्माओं जब शक्तिको अपने आधीन रखते हैं तो दूसरे कहे हुवे क्षुद्र प्राणीयों शक्तिके आधीन हो पडते हैं।

सच्चे सुख और पूर्ण शान्तिके लिये यदि कोई उपाय है तो यही है कि आत्मनिग्रह और आत्मशुद्धि। जहां घडी घडीमें ह[illegible] उभरे, तिरस्कारकी दांता, ईर्ष्या, अभिमान वगैरा विविध [illegible] उठें वहां चित्तकी शान्ति कैसे रक्खी जासकती है और

मनुष्यको सुख कहांसे मिले ? इन क्षणिक तरंगोंपर जय पावोगे तब सुखके 'थान'में सुनेरी तागा बुना कहाजायगा। तुम्हें एकान्तमें बैठकर शान्तिका अनुभव लेनेका प्रेक्टीस करना चाहिए। इधर उधर बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्र कर उन्हें एक इष्टकी ओर लगा देनेका यही मार्ग है।

जैसे जैसे तुम्ह अपने क्षणिक तरंग और विचारोंपर जय पाते जाओगे वैसे ही वैसे तुम्ह अपनेमें एक नई तरहकी शक्ति होती हुई देख पाओगे। और उससे तुम्हारा चहरा शान्त परन्तु दृढ बनेगा और निर्बलताकी जगह तुम्हमे ताकत आयगी। तुम्हे जान पडेगा कि हरेक कामकी सफलता हमारी राह देख रही है। इस शक्तिके साथही तुम्हारे हृदयमें एक शांतिका प्रकाश होगा। जिससे तुम्हारे भ्रम, वहम, अज्ञानता दूर होजायगी और आनन्द ही आनन्द होजायगा, विचारशक्ति खिलेगी, भविष्यमे क्या होगा सो भी जान सकोगे। इस शक्तिके प्राप्त होनेपर चाहे मनुष्य कुछ प्रयास न भी करे तो भी समर्थ पुरुषका लक्ष्य उसकी ओर अपने आप खिंचेगा। लक्ष्मी, यश वगैरा स्वयमेव खिच आंयगे।

मनुष्यका सुख--दुःख उसीके हाथमे है। जिस मनुष्यको सुखी, लोकोपकारी, दृढ होना हो उसे चाहिये कि वह दुःखभरे विचार-निराशाके विचार--किसीके अहित करनेके विचारोंके फंदेमें न पडे--और ऐसे विचारोंको रोककर उत्तम विचारोंको अपने मस्तिष्करूपी डिब्य सदनमें दाखिल करे। इसतरह अच्छे या बुरे विचारोंको अपने मस्तिष्कमे जैसे इकट्ठा करोगे वैसे ही वैसे सुख या दुःख कुदरती तोरपर आयाही करेगा।

प्रकरण ९ वां.

तंदुरुस्ती, विजय और शक्तिका रहस्य.
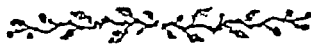
हम जब छोटे बच्चे थे तब हम परी और देवियों की बहुतसी बातें सुना करते थे और उससे हमें आनन्द भी होता था। किसी भले आदमीको ये परीयां और देवियां मदद देती थीं और ठीक अणीके समय राक्षस, दुष्ट राजा और शत्रुओसे उसे बचाता थीं. ऐसी बातोंको हम 'गप्प' मानते हैं परन्तु ये 'गप्प' नहीं है। हम जो पवित्रताके राज्यमें फिर बालक बन जायगे तो उस 'गप्प'को सर्वथा सत्य ही मानेंगे। ये परी और पुरुषके आसपास 'विचार'के रुपमें रहती है। 'विचार' यह

जीवित प्राणी है। और 'सुविचार' सुख देनेवाले प्राणीकी भांति यहां वहां फिरता है। पवित्र' शब्द यहां केवल 'नीतिमान' के अर्थमें नही लिखा गया, परन्तु इसमें निर्मल विचार, उच्च आशय, निःस्वार्थी प्रेम और निरभिमान, इतने गुणोंका भी समावेश समझना चाहिए। इन गुणोंमे रहनेसे अपने आसपास ऐसा अदृश्य वातावरण बनता है, जिसकी मधुरता और पूर्ण शक्तिका प्रभाव नजदीकमे आनेवाले प्राणीपर भी अवश्य पडता है।

जब सूर्य प्रकाशित होता है छाया या अंधकार दूर होजाता है; वैसे ही श्रद्धा और पवित्रतासे रंगे हुए मनके फैलते हुए दृढतारूपी किरणोंके साम्हने पापकी दुर्बल शक्तियां नाश होजाती हैं।

जहां सच्ची श्रद्धा और निष्कलंक पवित्रता हृदयमें जम जाती है वहां तन्दुरुस्ती है, वहां विजय है, वहां सामर्थ्य अथवा शक्ति है। ऐसे हृदयमें रोग, हार या दुर्भाग्य प्रवेश कर नहीं सकते; क्यों कि वहांपर इनके पालनके लिये कुछ खुराकि नहीं हैं।

शारीरिक स्थितिका बहुत कुछ आधार मानसिक स्थितिपर है, इस बातको 'धर्मशास्त्र' मंजूर करते हैं, इतनाही नहीं पाश्चिमात्य 'सायन्स' भी इसका अनुमोदन करते हैं। जडवादी ऐसा मानते आये है कि मनुष्यके मनका आधार उसके शरीरपर है; परन्तु अब इस बातका असत्यपन लोगोंके जानमे आया है और अब यों मानने लगे हैं कि "मन शरीरकी अपेक्षा उच्च तत्व है और शरीरकी स्थितिका बहुत कुछ आधार उसके विचारोंपर निर्भर है"।

मनुष्यको अजीर्ण हुआ है इस लिये वह चिंतातुर होता है ऐसी जो मान्यता लोगोमें फैली थी वह कम हो गई है। उसकी जगह अब लोग ऐसा मानने लगे हैं कि मनुष्यको पहले चिन्ता होती है और उसके फल स्वरूप अजीर्ण होता है। सब रोगों का आधार मानसिक स्थितिपर है, इस बातका ज्ञान समय आये सर्वमान्य हो जायगा, ऐसी आशा रखना कुछ अनुचित नहीं है।

इस जगतमें एक भी दुःख ऐसा नहीं है जिसका मूल मनमें न हो। जगतमें जो दुःख, पाप, रोग, उदासीनता हम देखते हैं वे विश्वव्यवस्थाके फलरूप नहीं है, वैसे ही किसी वस्तुके भीतर समाये हुए भी नहीं है, परन्तु वस्तुओंके परस्परके संबंधके अज्ञानसे उत्पन्न हुए हैं।

परंपरासे ऐसी बात चली आती है कि पहले भारत वर्षमें तत्वज्ञानियोंका एक समुदाय रहता था जो इतनी पवित्रता और सरलतासे अपनी जिन्दगीको व्यतीत करता था कि उसका प्रत्येक व्यक्ति १५०-१५० वर्ष तक जीता था और उस समयमें बीमार होना अक्षम्य अपराध समझा जाता था और बीमार होनेवालेको लोग तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। क्यों कि बीमार होना इस बातका सुबूत माना जाता था कि उसने ठीकठीक 'नियमों'का पालन नहीं किया। हम जितना जल्दी इस सत्यको स्वीकारें और मानें कि "बीमारी ईश्वरकी ओरका दंड नहीं है अथवा अविचारी विधाता की कसोटी नहीं है, परन्तु अपने दुष्कृत्य या पापका परिणाम है"--उतनाही जल्दी हम आरोग्य या तन्दुरस्ती के पास आ गये हैं ।

जो, रोगको बुलाते हैं, उसेही रोग प्राप्त होता है। जिसका मन और शरीर रोग ग्रहण करने योग्य बनता है उसीके शरीरमें रोग दाखिल हो सकता है। परन्तु जिनका दृढ, शुद्ध और पवित्र मनोबल चारों ओर तन्दुरुस्ती और बल के विचारोंको फैलाता है उनके शरीरसे रोग दूर भगता है।

जो तुम्हारे चित्तमे क्रोध, चिंता, ईर्ष्या, लोभ अथवा और कोई ऐसी ही हलकी विचार श्रेणी घूमती हो और तुम्ह सम्पूर्ण स्वास्थ्य की आशा रखते हो, तो अवश्य तुम्ह अशक्य बात की आशा रखते हो! क्योंकि तुम्ह क्षणक्षणमें अपने शरीरमे रोगके बीज बोते हो। जो वास्तवमें चतुर हैं वे ऐसी मनकी स्थितिका सर्वथा त्याग करते हैं। क्योंकि अस्वच्छ मोरीवाले और उठ कर लगनेवाले रोगके घरमें रहनेको अपेक्षा भी ऐसी मनकी स्थितिमें रहना विशेष भयकर है।

जो तुम्ह चाहते हो कि सम्पूर्ण शारीरिक रोगसे बचें और पूरी २ तन्दुरुस्ती भोगें तो अपने मनको 'नियम'में रक्खो, अपने विचारोंको परस्पर संगत बनाओ, प्रसन्नता और प्रेमके विचारोंको मनमें दाखिल करो और अपनी रगरगमें शुभेच्छाका प्रवाह बहने दो, बस इतनेमे ही तुम्हें फिर दवाकी जुरूरत नहीं पडेगी। ईर्ष्या दूर करो, वहमको छोडो, चिन्ताको देशनिकाला दो, धिक्कारको तिला-अलि दो, स्वार्थपरायणताको धकेलो, ऐसा होते ही इनके साथ ही अजीर्णता, गरमी, दुर्बलता, अंगभगादि सब दुःख जडमूलसे चले जायगे। जो तुम्ह अपनी निर्बल और अधम बनाने वाली

आदतोंको चिमटे रहो और तुम्हें बिमारी आकर चिमट जाय तो फिर किसीके साम्हने " मैं बीमार हूं " ऐसो शिकायत न करना। मनकी टेव और शारीरिक स्थितिका कितना ज्यादा संबंध है जो यह जानना हो तो नीचे लिखी हुई बात ध्यान देकर पढो।

एक बीमार भयंकर बीमारीसे पिडित था। वैद्य, हकीम और डाक्टर कोई भी उसकी बीमारीको दूर न कर सके। मंत्र यंत्र और तन्त्र के प्रोफेसरोंसे कुछ भी न हुआ। नदी और कुडोंमें न्हाया पर व्याधि न मिटी। एक दिन स्वप्नमें उसे एक साधु पुरुष देख पडा उसने उससे कहा: " भाई! क्या तू सब इलाज कर चुका? " बीमारने कहा: " अफसोस! मैं सब निष्फल इलाज कर चुका "। तब साधुने कहा: " डरे मत, चल मेरे साथ, मैं तुम्हे एक कुंड बताऊंगा, जिसमें स्नान करते ही तुझे आराम हो जायगा। " वह बीमार उस साधुके पीछे पीछे गया। एक स्वच्छ जलका कुंड आया वहा दोनो ठहर गये। "बच्चा! गोता मार इस कुंडमें; और हो जा तन्दुरुस्त!" यों कहकर वह साधु अदृश्य हो गया। उस बीमारने वैसाही किया और स्नान कर बहार निकलते ही तन्दुरुस्त हो गया। इस वक्त उसकी आंख उस कुंडपर के एक तखते पर पडी, जिसमे सुन्हेरी अक्षरोंमें चार हरफ खुदे हुए थे:--
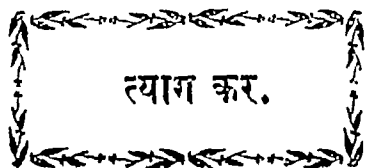
बीमार जग गया और उसके मस्तिष्कमें सारा स्वप्न चक्कर खाने लगा ! इस स्वप्नके गुह्य अर्थ पर मनन करते हुए उसे जान पड़ा कि आहार--विहारमें और हरेक बातमें मैं हदको उल्लंघ जाता हूं, इसीसे मुझे बीमार होना पड़ा है। मेरे लिये " त्याग कर " यह सुनहरी अक्षर ठीक हैं। और इसी समयसे--इसी क्षणसे उसने स्वप्नकी सलाहको अमलमें लानेका निश्चय किया। उसी वक्तसे वह खाने--पीनेमें मितव्ययी हुआ। शरीर और आत्माकी शक्तिओंका खर्च करनेमें भी मितव्ययी हुआ। काम, क्रोध, लोभ, मानके विकारोंको भी छोडने लगा। परिणाममें वह अपने मस्तिष्कमें शान्तिका अनुभव करने लगा। और इस आन्तरिक शान्तिकी परिछाई बाहर पड़नेसे शरीर भी शान्त नीरोग हो गया।

कितने ही मनुष्य विषयतृप्तिमें कुत्तेके समान -खाने और पीनेमें गीधके समान हो कर क्रोधादि आवेशोंके सहजमें वश होते हैं और असाध्य बिमारियां पैदा कर लेते हैं और फिर चिल्हाते हैं कि " अरेरे कामके बोझसे हम तो मर गये ! " या " कर्मने हमको मार डाला ! " ऐसे आत्मघातियोंके लिये उस बीमारके स्वप्नके शब्द " त्याग कर " अमूल्य सलाह है। मनुष्य स्वयं दर्द पैदा करते हैं और स्वयं जैसे मिटा सकते हैं वैसे दूसरा कोई नहीं मिटा सकता।

जो हम अच्छी तरह खोज करें तो हमें मालूम होगा कि शरीरकी निर्बलता यह शक्तिका मूर्खताके साथ उपयोग करनेका परिणाम है। जो तुम्हे सच्ची तन्दुरुस्ती पाना चाहते हो तो

निश्चिंत हो कर काम करना सीखो। चिन्तातुर होना, उद्वेग बना रखना, अथवा फोकट बातोंमें चित्तको दीलगीर बनाना हा शारीरिक निर्बलताका मुख्य कारण है। शारीरिक और मानसिक प्रत्येक काम तन्दुरुस्ती देनेवाला और उपयोगी है। जो मनुष्य चिंता और उद्वेगको दूर कर दृढता और धैर्यसे काम करते हैं और काम करते समय उस कामके सिवायके दूसरे सब विचारोंको मनसे दूर रखते हैं वे, चिन्ता और उद्वेगसे काम करने वालोंकी अपेक्षा बहुत अच्छा काम करते हैं। इतनाही नहीं वे अपने स्वास्थ्यको भी कायम रख सकते हैं। जल्दबाज और चिन्तातुर मनुष्यको यह (स्वास्थ्यका) लाभ कभी नही मिल सकता।

जहां स्वास्थ्य है वहां विजय है। विचारके वातावरणमें ये दोनों बंधे हुए हैं। जैसे मनकी उत्तमतासे शारीरिक तन्दुरुस्ती होती है वैसेही मनोबलसे अपने मनचीते कामोंकी सिद्धि भी होती है। पहले अपने विचारोंको सुव्यवस्थित करना सीखो। इससे तुम्हारा जीवनव्यवहार भी सुव्यवस्थित हो जायगा। जो तुम्ह अपने मनोविकार और पक्षपातके विचाररूपी जल तरङ्गों पर तेल डालते होगे तो दुःख और दुर्भाग्यका तूफान चाहे जैसा भारी क्यों न हो तुम्हारी जीवन--नौकाको कुछ हानि न पहुंचा सकेगा। और यदि तुम्हमें आनन्द और अडिग श्रद्धा होगी और इस संसार--समुद्रमें अपनी जीवन--नौकाको आनन्द और श्रद्धासे चलाते रहोगे तो तुम्हारा मार्ग सर्वथा निर्भय रहेगा और बहुतसे दुःखोंको तो सहजमें ही दूर कर सकोगे। श्रद्धाबलसे प्रत्येक काम

सिद्ध होता है। जो अपनी आत्मामें तुम्हें सम्पूर्ण श्रद्धा हो, जो प्रकृतिके महान व अचल नियममें तुम्हें सम्पूर्ण श्रद्धा हो, जो कार्य करनेकी शक्तिमें तुम्हें दृढ श्रद्धा हो, तो यह श्रद्धा ही एक ऐसा पहाड है जिस पर खडा हो कर तुम्ह प्रत्येक कार्यमें विजय प्राप्त कर सकोगे और भयंकर जीवनकलहमें अपना गुजारा आरामसे कर सकोगे.

यह श्रद्धा, यह विश्वास, यह प्रतीतिकी व्याख्या यही है कि, प्रत्येक स्थितिमें मनकी उत्तम भावनाके अनुसार वर्त्तन रखना, आत्मामें सम्पूर्ण विश्वास रखना, अंतःकरण पर श्रद्धा रखना, निश्चित व निर्भय मनसे अपना कार्य करना, अपने प्रत्येक कार्य व विचार का भविष्यमें यथायोग्य फल अवश्य ही मिलेगा ऐसा विश्वास रखना, प्रकृतिके कानून अचल व सनातन हैं जिसमें कभी लेश भी हानी होनेवाली नहीं हैं ऐसा ज्ञान प्राप्त करना, जिस चिज पर तुम्हारा हक्क है उसमेंसे कौडी जितना भी कमी करनेकी किसीकी ताकात नहीं है ऐसा अनुभव प्राप्त करना—ये सबका नाम 'श्रद्धा' है.

ऐसी श्रद्धाके बलसे हरेक संशय दूर हो जाता है, दुःखके पहाड उलांघे जा सकते हैं और श्रद्धालु आत्मा अपनी निरंतर उन्नति ही साधता रहता है।

प्रिय वाचक! प्रत्येक वस्तुसे मूल्यवान अमूल्य श्रद्धाको पानेका विशेष यत्न करना क्यों कि श्रद्धा सुख, विजय, शान्ति, सत्ता, और जिससे जीवन उन्नत हो ऐसी प्रत्येक वस्तुके पा जानेका इसमेंसे उत्तम यंत्र है।

जो तुम्ह ऐसी श्रद्धापर अपने विजय का मकान चुनोगे तो सचमुच तुम्ह नित्य पदार्थोंसे नित्यत्वकी नींवपर पाया चुनोगे और जो मकान तुम्ह बनाओगे वह कभी नाश न होगा; क्यों कि सम्पूर्ण धन दौलत जो अखीरमें नाशवान है उससे ज्यादा स्थायी और अचल वस्तु तुम्ह प्राप्त कर सकोगे। तुम्ह चाहे दु:खकी खाईमें पडे हो चाहे आनन्दके पर्वतपर चढे हो परन्तु इस श्रद्धा पर का अपना अधिकार कभी न खोना। तुम्हारा—मानो तुम्हारा ही हो इस तरह इस श्रद्धारूपी पलंगपर विश्राम करना और उसके अचल और नित्य पायेपर अपने पैरोंको जमाये रखना। जो तुम्हमें यह श्रद्धा अविचल होगी तो ऐसा आध्यात्मिक बल प्राप्त होगा कि जिससे तुम्ह आते हुए दुःखके बद्दलोंको खिलोनेकी भांति चुरचूर कर डालोगे और दुनियाकी मौजशोखकी चीजें इकठी करनेको लगे हुए मनुष्य जान सके या कल्पना कर सकें—उसकी अपेक्षा विशेष उच्च विजय तुम्ह प्राप्त कर सकोगे।

एक महापुरुषने कहा है किः—

"If ye have faith and doubt not, ye Shall not do only this...but if ye shall say unto this mountain, be thou removed and be thou cast into the Sea, it shall be done."

"जो तुम्हमें श्रद्धा होगी और संदेह न होगा तो तुम्ह ऊपर कहा हुआ ही न कर सकोगे बल्कि जो तुम्ह पर्वतसे कहोगे कि यहांसे हट और दरियामें गिर, तो वैसा भी हो जायगा."

इस जगतमें देहधारी जीतेजागते ऐसे स्त्री पुरुष निवास करते हैं कि जिन्होंने इस प्रकारकी श्रद्धाका अनुभव किया है

और प्रतिदिन अपना जीवन व्यवहार वैसी ही श्रद्धासे चलाते हैं। उन्होंने श्रद्धाको अच्छी तरह कसोटी पर कसकर कीर्ति और शांति प्राप्त की है। उन्होंने जय जय आज्ञा की है तभी तब दुख, उदासीनता, मानसिक चिंता और शारीरिक व्याधिके पहाड़के पहाड़ उनके सामहनेसे उड़कर विस्मृतिके समुद्रमें डूब गये हैं।

जो तुम्हमें यह श्रद्धा पूरी होगी तो फिर तुम्हें यह चिन्ता न करनी पड़ेगी कि हमारा काम सफल होगा या विफल। और ऐसा होनेपर भी विजय प्राप्त कर सकोगे। तुम्हें अपने कामके परिणामके बारेमें जरा भी चित्तको उचाटना न चाहिए परन्तु आनन्द और शान्तिके साथ काम करते जाना चाहिए क्यों कि सद्विचार और सत्प्रयत्नके परिणाम रूपमें तुम्हें अवश्य शुभ फल मिले होगा। यह ज्ञान तुम्हें उस श्रद्धासे हो जायगा।

यह लेखक एक ऐसी स्त्रीको भली भांति पहचानता है कि जो अपने प्रत्येक काममें सफलमनोर्थ हुई है। एक समय उसके एक मित्रने उससे कहा "तुम्ह कैसी भाग्यशालिनी हो! ज्यों ही तुम्ह किसी वस्तुकी इच्छा करती हो त्यों ही वह तुम्हें मिल जाती है" ऊपर ऊपरसे देखनेवालेको तो यही मालूम होगा कि ऐसे संयोग थे, परन्तु वास्तवमें जो शुभ वस्तुऐं उसे मिलतीथी उसका सच्चा कारण उसकी आनन्दमयी प्रकृति और

उत्तम रीतिसे जीवन व्यतीत करना यही वस्तु प्राप्त करनेका उत्तम साधन है। मूर्ख मनुष्य इच्छा करते हैं और वस्तु नही मिलती तब बड़बड़ाते हैं, परन्तु सुज्ञ मनुष्य पहले काम करते हैं और उसके फलतक मार्गकी प्रतीक्षा करते हैं। उस स्त्रीने भी काम किया था—भीतरसे और बाहरसे काम किया था, परन्तु मुख्यकर भीतरसे मन और आत्माको सुधारनेका यत्न किया था। आत्माके अदृश्य हाथोंसे उसने श्रद्धा, आशा, आनन्द, भक्ति और प्रेमरूपी अमूल्य रत्नोंसे एक सुन्दर मन्दिर बनाया था, जिस मंदिर का प्रकाश चारों ओर आनंदके किरण फैलाता था। उसकी आंखमें आनन्द झलक रहा था, उसके चहरेपर वह प्रकाशित हो रहा था, उसकी आवाजमें व्याप्त होरहा था। जो जो मनुष्य उस स्त्रीके संबंधमें आते थे उन सबको उस सर्वव्यापी आनन्दकी छायाका अनुभव होता था।

जैसा इस स्त्रीके संबंधमें हुआ वैसा तुम्हारे संबंधमें भी हो सकता है। तुम्हारा विजय या तुम्हारा प्रभाव–रे तुम्हारा संपूर्ण जीवन तुम्हारे ही हाथमें है--तुम्हारेपर ही आधार रखते हैं। तुम्हारा भविष्य कैसा होगा, उसका आधार तुम्हारे विचार कैसे हैं इसपर है। जो तुम प्रेमभरे, निष्कलंक और सुखमय विचारोंको तुम्हारे चारों ओर फैलाओगे तो तुम्हारे हाथमें सब उत्तम वस्तुएं आवेगी और जहां तहां शान्तिका अनुभव करोगे। और जो तुम द्वेषयुक्त अपवित्र और दुःखमय विचारोंका प्रवाह अपने हृदयमेंसे बहाओगे तो चारों ओरके लोगोंका तुम्हें शाप सुनाई पड़ेगा और तुम्हारे में बेचैनी अपना राज्य चलावेगी। तुम्हारा भाग्य कैसा

ही क्यों न हो परन्तु इसके बनानेवाले तुम्ही हो। तुम्हारा भविष्य सुधरेगा या बिगड़ेगा इसका आधार क्षण क्षणमें निकलते हुए तुम्हारे अच्छे-बुरे आन्तरिक विचारोंपर ही है। जो तुम अपने हृदयको विशाल, निःस्वार्थी और प्रेमभरा बना लोगे तो कदाचित् तुम्हें धन कम भी प्राप्त हो परन्तु तुम्हारा प्रभाव और विजय सचमुच महान और चिरस्थायी होंगे, और ऐसा होनेकी अपेक्षा यदि तुम स्वार्थके विचारोंमें डूब जाओगे तो कदाचित् तुम क्रोड़पति होजाओ परन्तु तुम्हारा प्रभाव और विजय तुच्छ होजायेंगे।

जो यह बात तुम्हारी समझमें सत्य जान पड़ती हो तो निःस्वार्थताको अपने हृदयमें निवास दो और इसीके साथ अपने हृदयमें श्रद्धा, पवित्रता और एकाग्रताको स्थान दो। इस तरह तुम पूर्ण सत्पुरुषताके बीज बोओगे तो उसके साथ ही चिरस्थायी विजय और अनन्त सामर्थ्यके बीज भी बोये जायंगे।

तुम्हें यदि अपनी वर्तमान स्थिति न भाती हो और तुम्हारे करनेके काममें जी न लगता हो तो भी बराबर ध्यानपूर्वक अपना कर्तव्य पालन करते जाओ और इसके साथ मनमें 'श्रद्धा' रक्खो कि थोड़े ही समयमें तुम्हें अच्छी स्थिति और अच्छे संयोग अवश्य प्राप्त होंगे।

तुम्हारे करनेका कोई भी काम क्यों न हो उसीमें अपने मनको एकाग्र करो, तुम्हमें जितना मनोबल हो उसीमें लगा दो। जो तुम्ह छोटे छोटे कामोंको अच्छी तरह करसकोगे तो बडे २ काम करनेके तुम्ह अपने आप योग्य होते जाओगे। धीरे धीरे और दृढतासे चढनेका अभ्यास करोगे तो तुम्ह कभी नहीं गिरोगे। और सच्ची सामर्थ्यका रहस्य इसीमें है। निरंतर अभ्यास कर अपने मनोबलको एकत्र करना और ठीक समयपर उसे एक ही बातपर लगादेना सीखो। मूर्ख मनुष्य अपनी मानसिक या आत्मिक सम्पूर्ण शक्तियोंको उद्धताईमें, निकम्मे गप्पोमें या स्वार्थमयी कल्लोलोंमें खर्च करडालते हैं, इतना ही नहीं बल्कि हद बाहर विषय सुखमें रचेपचे रह कर अपनी शारीरिक शक्तियोंका भी नाश करते हैं।

जो महाशक्ति पानेकी तुम्हारी इच्छा ही हो तो मौन, गंभीरता और धैर्य धारण करनेकी सबसे ज्यादा जुरुरत है। अकेले अडिग खडे रहना तुम्हें सीखना चाहिए। सब बलोंका आधार स्थिरतापर--अडिगपने पर है। पर्वतादिकी ओर दृष्टि करो, तुम्हारे समझमें आयगा कि उनकी किस तरहकी भव्य अचल शक्तिकी दृढता है। गिरती हुई रेती, झुकती हुई शाखा और पवनसे हिलती हुई बरू को भी देखो; तुम्हें फौरन उनकी निर्बलता जान पडेगी। ये सब चीजें चंचल हैं। इनमें सहन करनेकी शक्ति नहीं है। और जब ये अपनीसी वस्तुओंसे पृथक् हो जाती हैं तब वे किसी कामकी नहीं रहती। जिस समय अपने सब जाति भाइयों को विकार और लगन (Feelings) की असर हो उस समय भी जो शांत और स्थिर रह सके वही सच्ची सामर्थ्य वाला है।

जो मनुष्य अपने आपको वशमें रखना सीखा है वही दूसरों को वश रख सकता है अथवा आज्ञा दे सकता है। जो मनुष्य अस्थिर मनके हैं, डरपोक हैं या चंचल हैं ऐसे मनुष्योंको चाहिए कि दूसरोंकी संगतिमें रहें, दूसरोंका आश्रय लें; नहीं तो वे निराधार होकर अधम स्थितिमें जा पड़ेंगे।

परन्तु जो शान्त हैं, निडर हैं, और विचारवाला हैं उनके लिये जंगल उद्यान पर्वतका शिखर आदि एकांत स्थान उत्तम है। ऐसे स्थल उनको वर्तमान शक्तिमें उन्नति करेंगे। और विकाररूपी चक्र या भंवरसे मनुष्य जातिका बड़ा भाग संसार-समुद्रमें गोते खा रहा है, उन विकारोंपर जय पाकर वह मनुष्य सफलतापूर्वक अपने काममें आगे बढ़ेगा।

हलकी वासना यह 'शक्ति' नहीं है। वह तो शक्तिका दुरुपयोग है। अथवा शक्तिको तोड़ मरोड़ डालनेका साधन है। वासनाएँ भयंकर तूफान है जो बड़े जोश और जोरसे चट्टानसे टकराता है। परन्तु शक्ति है वह तो चट्टान की भांति अचल है और सब तरह के तूफानोंमें चट्टानकी तरह एकसा अडिग रह सकती है।

ल्यूथर नामका एक महान धर्मसुधारक हो गया है। उसके मित्रोंको इस बातकी शंका थी कि जो ल्यूथर वर्म्स नगरमें जाय तो कदाचित् ही जिन्दा लौटे। इस लिये वे उसे समझाने लगे। परन्तु सच्ची आत्म शक्तिको प्रकट करता हुआ धर्मसुधारक बोल उठा कि:-"अपनी इस छपरी पर जितने कवेलू हैं उतने भी राक्षस जो उस गांवमें रहते हों तो भी मैं वहां अवश्य जाऊंगा!"

जिस समय बेंजामिन डीझरेलाई पहले पहल पार्लीमेंटमें व्याख्यान देनेको खडा हुआ तब उससे ठीक ठीक बोला न गया, इससे सारी सभा हँसने लगी, उस समय उसने अपने धैर्यको काममें लाकर बोल उठा कि " एक दिन ऐसा भी आयगा तुम्ह मेरा व्याख्यान सुननेमें अपना गौरव समझोगे "। यह उसके शब्द इस बातकी सूचना देते हैं कि उसका अपनी आत्मिक शक्तिमें कितना विश्वास था।

एक नवयुवक प्राय. अपने काममें निष्फल होता था। जहां तहां उसे नाकामयाबी ही होती थी। उसे उसके मित्रोंने कहा कि अब प्रयत्न करना छोड दो, तब उसने कहा कि "ऐसा समय अब दूर नहीं है जब कि तुम्ह मेरा भाग्य और सम्पत्ति देख कर आश्चर्य पाओगे "। यह शब्द कह कर उसने सिद्ध किया था कि उसके हृदयमें एक ऐसी अपूर्व और अजित शक्ति है कि जिसके बलसे वह अनेक संकटोंके पार हो गया है और विजय पानेके योग्य हो गया है।

जो तुम्हमें ऐसा बल–ऐसी शक्ति न हो तो कुछ चिंताकी बात नहीं। अभ्यास करो तो तुम्ह भी उस शक्तिको पा सकोगे। और ज्ञान पानेका आरम्भ करना यह शक्ति प्राप्त करनेका प्रारम्भ करनेके बराबर है। पहले तो हलकी और तुच्छ बातोंके तुम्ह गुलाम बन रहे हो, उनपर मालिकी प्राप्त करनेका यत्न करो। बेकाम खडखड हँसना, किसीकी निन्दा करना या गप्पें मारना, दूसरोंको हँसाने के लिये ही किसीकी ठट्ठा मसखरी करनाः इन बातोंका पहले त्याग करो; क्यों कि तुम्हारा कीमती वक्त,

बहुतसी ऐसी तुच्छ बातोंमें ही चला जाता है। इसी सबबसेही
बड़ी चतुराईसे काम लो और मनुष्य स्वभावका भली भांति अनु-
भव पाकर भेद पालने इसीलियन लोगोंको निकम्मे गप्पे मारनेके
तथा हंसी मसखरी करनेके विरुद्ध सख्त उपदेश दिया था। कारण
कि ऐसी बातोंमें समय खोना आत्मिक शक्ति और जीवन
नाश करनेके बराबर है। ऐसी ऐसी तुच्छसी बातोंपर जब तुम
पहले ही जय पाओगे अर्थात इन २ बातोंका कुछ भी प्रभाव
तुम्हारे हृदयपर न होगा तभी तुम्हें 'सच्ची शक्ति क्या है इसका
कुछ आभास पहले पहल होगा। इसके बाद तुम्हें उन २ प्रबल
विचार और वासनाओंके साथ युद्ध करनेको भी समर्थ होंगे जो
तुम्हारी आत्माको बंधनमें रखते हैं और तुम्हारी उन्नतिमें विघ्न
पहुंचाते हैं। ऐसा होने पर तुम्हारी समझमें अपने आप आयगा
कि अब क्या करना चाहिए।

विजय मिलती ही जायगी-तुम्ह ऊंचेसे ऊंचे स्थानपर चढते ही जाओगे-तुम्हारी दृष्टि बढती ही जायगी और तुम्हें जीवनका हेतु और सौंदर्य्य साफ तोरपर देख पडेंगे। अपने 'आप'को पवित्र और शुद्ध रखनेसे तुम्ह अवश्य तन्दुरुस्त बनोगे

जो तुम्हें अपनी जातमें श्रद्धा होगी तो अवश्य तुम्हें अपने काममें विजय मिलेगी। जो तुम्ह अपने आपको वशमें रख सकोगे तो सब सत्ता अपने आप तुम्हें आ मिलेगी। तुम्हारे प्रत्येक काममें तुम्हें सिद्धि मिलेगी; क्योंकि तुम्ह कोई भिन्न व्यक्ति हो इस रीतिसे काम नही करते और न तुम्ह स्वार्थके दास हो, बल्कि जगतके भलेके लिये काम करनेवाली शक्तियोंके साथ एक होकर तुम्ह काम करते हो। इससे तुम्हारा जीवन सार्वजनिक कामोंके लिये काममें आता है। इस मार्गपर चलते हुए जो तन्दुरुस्ती तुम्हें मिलेगी वह सदा तुम्हारे ही पास रहेगी। तुम्हे जो विजय मिलेगी वह मनुष्योंकी गिनतीके परले पारकी होगी, उसका कभी लोप न होगा। तुम्हारी शक्ति और प्रभाव ज्यों ज्यों काल बीतेगा बढतेंही जायगे। कारणकि इस जगतको धारण करनेवाले जो नित्य तत्व हैं उसीके एक भागरूप तुम्ह भी हो।

अब तुम्ह समझ गये होगे कि तन्दुरुस्तीका रहस्य पवित्र हृदय और सुव्यवस्थित मन है। विजयका रहस्य अटग श्रद्धा और अच्छी रीतिसे योजना किया हुआ कार्य है। और इच्छारूपी काली घोडीको परिपूर्ण विचार-शक्तिसे वशमें रखना ही प्रभाव (शक्ति) का रहस्य है।

प्रकरण ६ ठा.

परम सुख अथवा आनन्द कहां है ?

मनुष्य सुख पानेकेलिये बड़े आतुर जान पड़ते हैं परन्तु जितनी यह आतुरता है उतनी ही जगतमें सुखकी कमी जान पड़ती है ! पैसे मिलनेसे स्यातही सुख मिलेगा इस विचारसे बहुतसे

बहुतसे गरीब मनुष्योंसे इनकी कुछ अच्छी हालत नहीं है। इस बातको हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो यह नतीजा आयगा कि सुखका आधार कुछ बाह्य वस्तुओंकी प्राप्ति पर नहीं है और न दुःखका आधार उन वस्तुओंके न मिलने पर है।

जो ऐसा न होता तो सब गरीब दुःखी होते और सब धनवान सुखी। परन्तु जगतकी ओर देखनेसे कुछ और ही भांतिका दृश्य दिखाई देता है। इस लेखकने ऐसे भी मनुष्य देखे हैं जो खुब धनदौलत वाले होने पर भी दुःखीसे दुःखी थे और ऐसे भी मनुष्य देखे हैं जो सुखीसे सुखी हैं और अपनी आजीविका जितना भी धन कठिनतासे कमाते हैं। बहुतसे मनुष्य जिन्होंने अपना सारा जीवन धन इकट्ठा करनेमें ही बिताया, वे स्पष्ट रीतिसे स्वीकार करते हैं कि धन कमाकर उसका उपयोग स्वार्थमें ही करनेसे जिन्दगी नीरस हो जाती है और जब वे गरीब थे तब विशेष सुखी थे।

तब सुख क्या है? वह कैसे मिल सकता है? क्या वह स्वप्न या मिथ्या भ्रम ही है? या दुःख शाश्वत है?

बारिक दृष्टिसे विचार करने पर हम ऐसे निश्चय पर आ सकते हैं कि जिन्होंने सद्‌ज्ञानके मार्गमें पैर रक्खा है उन्हें छोड़कर दूसरे सब मनुष्य ऐसा मानते हैं कि अपनी इच्छाओंको तृप्त करनेका नाम ही सुख है। अज्ञानसे उत्पन्न हुई और स्वार्थके विचारोंसे बल पाई हुई ऐसी मान्यता ही दुःखका सच्चा कारण

'इच्छा' शब्द यहां पर 'हलकी' वासना' के अर्थमें ही नहीं

जितना कुछ अनुभव करोगे उतना ही तुम्हें ज्ञान होगा कि निश्चय सुख क्या है।

जबतक स्वार्थदृष्टिसे तुम अपने लिये सुख या सुखके पदार्थों को ढूंढोगे तबतक सच्चा सुख तुमसे दूर भागेगा और तुम दुर्भाग्य के पात्र होंगे। दूसरोंका भला करनेमें—परोपकार करनेमें जितना कुछ सहता या त्याग कर सकते हो उतने ही तुम सच्चा सुख पानेके योग्य बनसकते हो और आनन्दके भोगी होसकते हो।

स्वार्थका विचार करनेसे तुम्ह दुःखका स्वागत करते हो। स्वार्थका विचार छोडो, इससे तुम्ह शांतिको बुलाओगे। स्वार्थके विचार कर तुम्ह सुखको खोते हो, इतना ही नही परन्तु जिसे हम सुखका मूल मानते हैं वह भी चला जाता है। जिसे जीभकी चाट लग गई हो ऐसा मनुष्य नये नये स्वादिष्ट खुराकके लिये तरसता है, मरी हुई भूखको चितानेके लिये अनेक रोचक पदार्थ खाता है, परन्तु थोडे ही दिनमें अजीर्ण हो कर उसे अनेक रोग आ घेरते हैं। और इससे वह जितना पहले खा सकता था उतना भी नही खा सकता। परन्तु जिसने अपनी जीभको वशमें किया है उसे स्वादिष्ट पदार्थोंकी कुछ परवा नही होती, वह सादा खुराकमे ही परम सुख मानता है। स्वार्थी मनुष्य सोचते हैं कि इच्छाओंकी तृप्तिमे सुखके देवताकी मूर्ति है, परन्तु ज्यो ही वे उस मूर्तिको पकडनेको जाते हैं त्यों ही उनके हाथमें दुःखका हाड-पिंजर आता है। धर्म शास्त्र ठीक ही कहते हैं कि "जो मनुष्य स्वार्थके कारण अपने ही विचारमें मग्न रहते हैं उनका जीवन व्यर्थ जाता है और जो परोपकारके आशयसे अपनेको भूल जाते हैं वे परमार्थका साधन करते हुए सच्चे स्वार्थका भी साधन करते हैं। अर्थात् वे परम आनन्दके भोक्ता है"।

जब तुम स्वार्थपरायणतासे किसी भी वस्तुकी इच्छा करना छोड दोगे और स्वार्थत्याग वृत्ति ग्रहण करोगे तब तुम्ह शाश्वत सुखके ग्रहण करने योग्य बनोगे। जिस क्षणिक वस्तुको तुम्ह चाहते हो (जो कभी न कभी तुम्हारे हाथसे अवश्य निकल जायगी) उसे सर्वथा त्याग कर देनेको जो तुम्ह प्रसन्नतासे तैयार [illegible] तुम्हे ज्ञात होगा कि जो तुम्हें हानिकारक और दुःखरुप

और उस समय तक उन्हें सुख मिल भी नहीं सकता जब तक उन्हें यह खात्री न हो जाय कि सुख तो उन्हीमें मौजूद है, उनके आसपास चारों ओर मौजूद है, केवल स्वार्थके परदेको हटानेकी देर है।

इस संबंधमें कवि बर्ले ने परम सुखका कारण दिखलाते हुए खूब ही कहा है कि:—

(१)

सुखके लिये हुआ मैं बाहर
गया वृक्ष—वेलोंके पास
वन उपवन गिरि खेत विहङ्गम
पूर सके कोई न मम आस।

(२)

मैं हारा, कंटाल गया, दी—
सुखकी आशा मैंने छोड़,
एक झिरनके समीप बैठा
लिया जगतसे मुखको मोड़।

(३)

इतनेमें कुछ मनुष्य आये
बोला पहला उनमेंसे
"भूखा हूं मैं" भोज्य दिया तब
जो कुछ वहां बना मुझसे।

दिश्य—मनोहर रम्यरूप धर
सुख—वांछित सुख खड़ा हुआ ?

(९)

बोला मेरे कानोंमें यों
" हुआ आजसे मैं तेरा
तूने अपने शुभ कामोंसे
बना लिया मुझको चेरा ! "

(१०)

'गिरिधर' सुखका सिद्ध मंत्र पा
हो प्रसन्न बन गया महान;
वन—उपवन—तरु—लता--विहग सब
सुखदायक हो गया जहांन ।

अपने ही लिये सुख चाहनेके विचार और क्षणिक सुखके विचारोंको छोडो, तुम्ह सर्व व्याप्त और चिरस्थायी सुख पानेको भाग्यशाली बनोंगे । हलकी और स्वार्थ भरी 'अहंता'के कारण तुम्ह सब वस्तुओंको अपने लाभके लिये चाहते हो । इस स्वार्थको छोडनेसे अभी हालमें तुम्ह 'देवताओंके साथी' बन जाओंगे । इस जगतमें रहकर भी तुम्हें सर्वगत (universal) प्रेमका कुछ अनुभव होगा। दुसरोंके दुःख दूर करने और दुसरोंकी तंगियोंको मिटानेमें तुम्ह अपने स्वार्थको भूल जाओगे तो स्वर्गीय सुख मिलेगा और वह तुम्हें सब दुःख दर्द और रंजसे छुडा देगा।

" शुभ विचार, शुभ वचन और शुभ कार्यरूपी सीढी पर चढकर मैं स्वर्गमें दाखिल हो गया " यह एक महात्माका वचन

को भोग सकोगे। उस समय तुम्हें अनुभव होगा कि लेनेकी अपेक्षा देनेमें विशेष आनन्द है।

परन्तु यह देनेका काम निस्वार्थ वृत्तिसे–फलकी आशा न रख करना चाहिए। पवित्र प्रेमके साथ दी हुई दक्षिणा याने दानसे निरन्तर आनन्द ही आनन्द मालूम होता है। तुम्ह सब कुछ दे डालो तो भी, तुम्हारा उपकार माननेमें न आवे, या किसी जगह तुम्हारा नाम न प्रसिद्ध किया जाय, या रायबहादुर—खान बहादुर वगैरा तुम्हें पद न मिले और उस समय जो तुम्हारा मन दूखे तो निश्चय समझना कि तुम्हारी दी हुई दक्षिणा याने दान सच्चे प्रेमका परिणाम न था बल्कि तुम्हारी मिथ्या मगरूरीका परिणाम था और तुम्ह पानेके लिये ही देतेथे. सच कहें तो देते ही न थे, बल्कि लेतेथे। दूसरों के हितके लिये अपने स्वार्थका बलिदान देना सीखो। तुम्ह जो जो काम करो उसमेंसे अहंताके विचार को दूर करो। ये सब परम सुखके उत्तम रहस्य हैं। स्वार्थके विचार तुम्हारे हृदयमें न हुस वट इसके बारेमें पूरा पूरा ध्यान रक्खो और अन्त.करणसे –हृदयसे आत्मत्यागका उत्तम पाठ सीखो। इससे तुम्ह सुखके ऊंचेसे ऊंचे सिखर पर पहुंच सकोगे और निरभ्र (बादल रहित) आनन्दके प्रकाशमें खेलोगे और अमरताकी तेजस्विनी पोशाक पहनोगे.

करता है। " जो असन्तुष्ट है, वही दुःखी है " अपने पास जो है उससे जो संतोष मानता है वह सुखी है और जो अपने पासकी वस्तुको उदारतापूर्वक व्यय कर सकता है वही सच्चा धनवान है।

इस जगतमें भौतिक और आध्यात्मिक अनेक शुभ वस्तुएं चारों ओर फैली हुई है इस बातपर, और साथही इस बातपर भी कि मनुष्य थोडेसे द्रव्यके लिये या थोडीसी जमीनके लिये कैसा घमसान युद्ध मचा डालते हैं, विचार करते है तो हमे कुछ कुछ ख्याल होता है कि बिचारे मनुष्य कैसे अज्ञान हैं। उसी समय अनुभव भी होता है कि स्वार्थपरायणता बडीसे बडी आत्मघात है। कुदरतको देखो; वह खुले हाथोंसे अपनी बक्षिसे चारों ओर लुटाती है तो भी उसे किसी बातकी कमी नही आती। अब मनुष्यको देखो, तुम्हें दीख पडेगा कि वह सब चीजोंको पानेको दौडता फिरता है तो भी अन्तमे सब वस्तुओंको खो बैठता है। अवकाशके समय इसका मुकाबला करो। जो तुम्हे सच्ची ऋद्धि पानेकी इच्छा हो तो पहले बहुतसे मनुष्योंने मान लिये हुए खोटे विचारको दूर कर दो कि 'परमार्थ करनेसे उलटा हमे दुःख होगा'। 'स्पर्धा'के तत्त्वपर श्रद्धा न रक्खो, क्योंकि उसपर श्रद्धा रखनेसे तुम्हारी यह 'श्रद्धा' जाती रहेगी कि "अन्तमें सत्यका ही जय होता है"। इस स्पर्धाके बारेमे लोगोंके विचार कैसेही क्यों न हों परन्तु उसमे श्रद्धा तो नहो ही है। प्रेम और सद्गुणके सनातन नियमसें सम्पूर्ण विश्वास रक्खो, क्योंकि यह नियम स्पर्धाके सब कायदोंको निकम्मे बना दूर निकाल देगा। और धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्योंके हृदयमे तो स्पर्धाके कायदे न मालूम कबसे रफूचक्कर हो चुके हैं। जिसको ऐसी श्रद्धा होती है वह अप्रामाणिक

करता है। " जो असन्तुष्ट है, वही दुःखी है " अपने पास जो है उससे जो संतोष मानता है वह सुखी है और जो अपने पासकी वस्तुको उदारतापूर्वक व्यय कर सकता है वही सच्चा धनवान है।

इस जगतमें भौतिक और आध्यात्मिक अनेक शुभ वस्तुएे चारों ओर फैली हुई है इस बातपर, और साथही इस बातपर भी कि मनुष्य थोडेसे द्रव्यके लिये या थोडीसी जमीनके लिये कैसा घमसान युद्ध मचा डालते हैं, विचार करते है तो हमे कुछ कुछ ख्याल होता है कि बिचारे मनुष्य कैसे अज्ञान है। उसी समय अनुभव भी होता है कि स्वार्थपरायणता बडीसे बडी आत्मघात है। कुदरतको देखो, वह खुले हाथोंसे अपनी बक्षिसे चारों ओर लुटाती है तो भी उसे किसी बातकी कमी नही आती। अब मनुष्यको देखो, तुम्हे दीख पडेगा कि वह सब चीजोंको पानेको दौडता फिरता है तो भी अन्तमे सब वस्तुओंको खो बैठता है। अवकाशके समय इसका मुकाबला करो। जो तुम्हे सच्ची ऋद्धि पानेकी इच्छा हो तो पहले बहुतसे मनुष्योंने मान लिये हुए खोटे विचारको दूर कर दो कि 'परमार्थ करनेसे उलटा हमे दुःख होगा'। 'स्पर्धा'के तत्त्वपर श्रद्धा न रक्खो, क्योंकि उसपर श्रद्धा रखनेसे तुम्हारी यह 'श्रद्धा' जाती रहेगी कि "अन्तमें सत्यका ही जय होता है"। इस स्पर्धाके बारेमे लोगोंके विचार कैसेही क्यों न हों परन्तु उसमे श्रद्धा तो नहीं ही है। प्रेम और सद्गुणके सनातन नियमोंमें सम्पूर्ण विश्वास रक्खो, क्योंकि यह नियम स्पर्धाके सब कायदोंको निकम्मे बना दूर निकाल देगा। और धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्योंके हृदयमे तो स्पर्धाके कायदे न मालूम कबसे रफूचक्कर हो ही चुके है। जिसको ऐसी श्रद्धा होती है वह अप्रामाणिक

पन देख कर भी अपने मनकी शान्तिको भंग नहीं होने देता, क्यों कि उसे दृढ विश्वास होता है कि आखिरकार अप्रामाणिकता का नाश अवश्य होवेही गा।

तुम्ह चाहे जैसे संयोगोंमें क्यों न आपडे हो तो भी तुम्हें उन संयोगोंमे जो बात धर्मपूर्ण और न्याययुक्त मालूम हो उसीके अनुकूल चलो, और 'नियम'मे श्रद्धा रक्खो। और भरोसा रक्खो कि जगतमें व्याप्त रही दैवी शक्ति हमें छोड न देगी, वह सदा हमारी रक्षा ही करेगी। ऐसे विश्वाससे सबके सब अलाभ लाभके रूपमें पलट जायगे और सम्पूर्ण आपत्तिया आशिर्वादका रूप ग्रहण कर लेंगे। प्रामाणिकता, उदारता और प्रेमका कभी परित्याग न करो, क्योंकि सद्गुणोंके साथ उद्योग होगा तो सच्ची ऋद्धिके भोगनेवाले बनोगे। " पहले मैं, पीछे सब " मनुष्योंके बुरे विचारोंसे बँधी हुई इस मानताको कभी मान न दो, क्योकि इस मानताको मान देनेसे तुम्ह कभी औरोंका भला न कर सकोगे, बल्कि बडे स्वार्थी (पुरूलपेटे) हो जाओगे।

ऐसे संकुचित विचारवाले मनुष्योंको उनके जीवनमें ऐसे मोके भी आ पहुंचते है कि उन्हें सब छोड देते है और वे दुःख अकेले पडे पडे हाय हाय किया करते है। उनकी आवाज कोई नहीं सुनता और न कोई मदद देता है। सबको भूलकर केवल अपने ही विचार करनेसे मनुष्यके उच्चसे उच्च और उत्तमसे उत्तम गुण खिलने नहीं पाते। जो तुम्हारा मन विशाल और हृदय औरोंके प्रेमसे पूर्ण होकर उनके अन्त करणसे मिलता होगा तो तुम्हें अपूर्व और महा आनन्द होगा और नि.सन्देह अनन्त समृद्धि प्राप्त होगी।

करता है। " जो असन्तुष्ट है, वही दुःखी है " अपने पास जो है उससे जो संतोष मानता है वह सुखी है और जो अपने पासकी वस्तुको उदारतापूर्वक व्यय कर सकता है वही सच्चा धनवान है।

इस जगतमें भौतिक और आध्यात्मिक अनेक शुभ वस्तुऐं चारों ओर फैली हुई हैं इस बातपर, और साथही इस बातपर भी कि मनुष्य थोडेसे द्रव्यके लिये या थोडीसी जमीनके लिये कैसा घमसान युद्ध मचा डालते हैं, विचार करते हैं तो हमें कुछ कुछ ख्याल होता है कि बिचारे मनुष्य कैसे अज्ञान हैं। उसी समय अनुभव भी होता है कि स्वार्थपरायणता बडीसे बडी आत्मघात है। कुदरतको देखो, वह खुले हाथोंसे अपनी बक्षिसे चारों ओर लुटाती है तो भी उसे किसी बातकी कमी नही आती। अब मनुष्यको देखो, तुम्हे दीख पडेगा कि वह सब चीजोंको पानेको ढोडता फिरता है तो भी अन्तमे सब वस्तुओको खो बैठता है। अवकाशके समय इसका मुकाबला करो। जो तुम्हे सच्ची ऋद्धि पानेकी इच्छा हो तो पहले बहुतसे मनुष्योंने मान लिये हुए खोटे विचारको दूर कर दो कि 'परमार्थ करनेसे उलटा हमे दुःख होगा'। 'स्पर्धा'के तत्वपर श्रद्धा न रक्खो, क्योंकि उसपर श्रद्धा रखनेसे तुम्हारी यह 'श्रद्धा' जाती रहेगी कि "अन्तमें सत्यका ही जय होता है"। इस स्पर्धाके बारेमे लोगोंके विचार कैसेही क्यों न हों परन्तु उसमे श्रद्धा तो नही ही है। प्रेम और सद्गुणके सनातन नियममें सम्पूर्ण विश्वास रक्खो, क्योंकि यह नियम स्पर्धाके सब कायदोंको निकम्मे ... दूर निकाल देगा। और धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाले ...योंके हृदयमे तो स्पर्धाके कायदे न मालूम कबसे रफूचक्कर हो चुके हैं। जिसको ऐसी श्रद्धा होती है वह अप्रामाणिक

पन देख कर भी अपने मनकी शान्तिको भंग नहीं होने देता, क्योंकि उसे दृढ विश्वास होता है कि आखिरकार अप्रामाणिकता का नाश अवश्य होवेही गा।

तुम्ह-चाहे जैसे संयोगोंमें क्यों न आपडे हो तो भी तुम्हें उन संयोगोमें जो बात धर्मपूर्ण और न्याययुक्त मालूम हो उसीके अनुकूल चलो, और 'नियम'में श्रद्धा रक्खो। और भरोसा रक्खो कि जगतमें व्याप्त रही दैवी शक्ति हमें छोड न देगी, वह सदा हमारी रक्षा ही करेगी। ऐसे विश्वाससे सबके सब अलाभ लाभके रूपमें पलट जायगे और सम्पूर्ण आपत्तियां आशिर्वादका रूप ग्रहण कर लेंगे। प्रामाणिकता, उदारता और प्रेमका कभी परित्याग न करो; क्योंकि सद्गुणोंके साथ उद्योग होगा तो सच्ची ऋद्धिके भोगनेवाले बनोगे। " पहले मैं, पीछे सब " मनुष्योंके बुरे विचारोंसे बँधी हुई इस मानताको कभी मान न दो, क्योंकि इस मानताको मान देनेसे तुम्ह कभी औरोंका भला न कर सकोगे, वल्कि बडे स्वार्थी (एकलपेटे) हो जाओगे।

ऐसे सकुचित विचारवाले मनुष्योंको उनके जीवनमें ऐसे मोके भी आ पहुंचते हैं कि इन्हें सब छोड देते हैं और वे दुःख अकेले पडे पडे हाय हाय किया करते हैं। उनकी आवाज कोई नही सुनता और न कोई मदद देता है। सबको भूलकर केवल अपने ही विचार करनेसे मनुष्यके उच्चसे उच्च और उत्तमसे उत्तम गुण खिलने नहीं पाते। जो तुम्हारा मन विशाल और हृदय औरोंके प्रेमसे पूर्ण होकर उनके अन्तःकरणसे मिलता होगा तो तुम्हें अपूर्व और महा आनन्द होगा और निःसन्देह अनन्त समृद्धि प्राप्त होगी।

करता है। " जो असन्तुष्ट है, वही दुःखी है " अपने पास जो है उससे जो संतोष मानता है वह सुखी है और जो अपने पासकी वस्तुको उदारतापूर्वक व्यय कर सकता है वही सच्चा धनवान है।

इस जगतमें भौतिक और आध्यात्मिक अनेक शुभ वस्तुऐं चारों ओर फैली हुई हैं इस बातपर, और साथही इस बातपर भी कि मनुष्य थोडेसे द्रव्यके लिये या थोडीसी जमीनके लिये कैसा घमसान युद्ध मचा डालते हैं, विचार करते हैं तो हमें कुछ कुछ ख्याल होता है कि बिचारे मनुष्य कैसे अज्ञान हैं। उसी समय अनुभव भी होता है कि स्वार्थपरायणता बडीसे बडी आत्मघात है। कुदरतको देखो; वह खुले हाथोंसे अपनी बक्षिसें चारों ओर लुटाती है तो भी उसे किसी बातकी कमी नहीं आती। अब मनुष्यको देखो; तुम्हें दीख पडेगा कि वह सब चीजोंको पानेको दौडता फिरता है तो भी अन्तमे सब वस्तुओंको खो बैठता है। अवकाशके समय इसका मुकाबला करो। जो तुम्हें सच्ची ऋद्धि पानेकी इच्छा हो तो पहले बहुतसे मनुष्योंने मान लिये हुए खोटे विचारको दूर कर दो कि 'परमार्थ करनेसे उलटा हमें दुःख होगा'। 'स्पर्धा'के तत्त्वपर श्रद्धा न रक्खो, क्योंकि उसपर श्रद्धा रखनेसे तुम्हारी यह 'श्रद्धा' जाती रहेगी कि "अन्तमें सत्यका ही जय होता है"। इस स्पर्धाके बारेमें लोगोंके विचार कैसेही क्यों न हों परन्तु उसमे श्रद्धा तो नहीं ही है। प्रेम और सद्गुणके सनातन नियममें सम्पूर्ण विश्वास रक्खो, क्योंकि यह नियम स्पर्धाके सब कायदोंको निकम्मे बना दूर निकाल देगा। और धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्योंके हृदयमें तो स्पर्धाके कायदे न मालूम कबसे रफूचक्कर हो चुके हैं। जिसको ऐसी श्रद्धा होती है वह अप्रामाणिक

पन देख कर भी अपने मनकी शान्तिको भंग नहीं होने देता; क्योंकि उसे दृढ विश्वास होता है कि आखिरकार अप्रामाणिकता का नाश अवश्य होवेही गा।

तुम्ह चाहे जैसे संयोगोमे क्यों न आपडे हो तो भी तुम्हें उन संयोगोमे जो बात धर्मपूर्ण और न्याययुक्त मालूम हो उसीके अनुकूल चलो, और 'नियम'में श्रद्धा रक्खो। और भरोसा रक्खो कि जगतमे व्याप्त रही दैवी शक्ति हमें छोड न देगी, वह सदा हमारी रक्षा ही करेगी। ऐसे विश्वाससे सबके सब अलाभ लाभके रूपमें पलट जायगे और सम्पूर्ण आपत्तिया आशिर्वादका रूप ग्रहण कर लेंगे। प्रामाणिकता, उदारता और प्रेमका कभी परित्याग न करो; क्योकि सद्गुणोके साथ उद्योग होगा तो सच्ची ऋद्धिके भोगनेवाले बनोगे। " पहले मैं, पीछे सब " मनुष्योके बुरे विचारोसे बँधी हुई इस मानताको कभी मान न दो, क्योकि इस मानताको मान देनेसे तुम्ह कभी औरोका भला न कर सकोगे, बल्कि बडे स्वार्थी (एकलपेटे) हो जाओगे।

ऐसे सकुचित विचारवाले मनुष्योको उनके जीवनमें ऐसे मौके भी आ पहुंचते है कि उन्हे सब छोड देते है और वे दु.ख अकेले पडे पडे हाय हाय किया करते है। उनकी आवाज कोई नही सुनता और न कोई मदद देता है। सबको भूलकर केवल अपने ही विचार करनेसे मनुष्यके उच्चसे उच्च और उत्तमसे उत्तम गुण खिलने नहीं पाते। जो तुम्हारा मन विशाल और हृदय औरोके प्रेमसे पूर्ण होकर उनके अन्त.करणसे मिलता होगा तो तुम्हें ... और महा आनन्द होगा और निःसन्देह अनन्त समृद्धि प्र

जिन लोगोंने धर्म और प्रेमके नियमोंका परित्याग किया है उन्हें अपना बचाव करनेके लिये स्पर्धा के नियमोंकी जुरूरत होती है। परन्तु जो लोग धार्मिक है-प्रेमी हैं उनके लिये इसकी कोई आवश्यकता नही है, यह दलील फोकट नही है। इस समय भी जगतमें ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिन्होंने अपनी प्रामाणिकता और विश्वासके बलसे स्पर्धाके नियमोंका अनादर किया है। वे स्पर्धाका प्रसंग आने पर भी अपने सत्य नियमोंसे जरा भी नही हटते और धीरे धीरे ऋद्धि पानेको शक्तिमान हुए हैं, और जिन लोगोंने उन्हें हरानेका यत्न किया वे सब उनके काममें निष्फल हुए हैं।

जिन लोगोंमें ऐसे सद्गुण हैं उन्हें वे सद्गुण अमोघ बख्तर का काम देते हैं, जिनपर किसी भी अशुभ तत्व रूपी शस्त्रका कुछ भी असर नहीं होता। दुःखके प्रसंगमें भी यह सद्गुण दूनी रक्षा करते हैं। जिनमें ऐसे सद्गुण निवास करते है वे ऐसे पाये पर विजयकी इमारत चुनते है कि जो कभी डगेगा नहीं। और इससे ऐसी ऋद्धि मिलती है कि जो सदा समान भावसे स्थित रहती है.
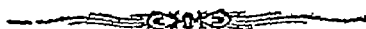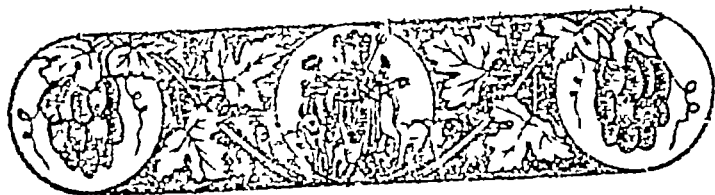
प्रकरण ८ वाँ.
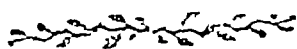
ध्यानकी शक्ति.

आत्मिक ध्यान यह दैवी मार्ग है। पृथ्वी परसे स्वर्गमें, अशुभमेंसे शुभमें, दुःखमेंसे सुखमें और अशान्तिमेंसे शान्तिकी ओर ले जाने-वाली एक गुप्त निसरनी है। प्रत्येक महात्मा इसी निसरनी पर चढे हैं। जिसे हम इस समय 'पापी' 'अधम' व 'नीच' मानते हैं वह भी जल्दी या देरमें इस निसरनी पर चढकर उन्नति पा सकता है। जगतसे कंटाले हुये यात्री जिन्होंने जगतको मिथ्या माना है और उसकी ओरसे नजर हटाकर अपने परम पिताकी ओर दृष्टि की है वे सब इसी मार्गका आसरा लेते हैं। एकाग्रता या ध्यानके बिना कभी

पवित्र भावना, पवित्र शान्ति, अमर कीर्ति और शुद्ध आनन्द नही खिलेंगे। इस समय यह सब उच्च भावनाऐं हमसे दूर २ जाती हैं; परन्तु ध्यानकी सहायतासे ये सब अपने वशमें आ जायगी। जेम्स एलन नामक अंग्रेजी तत्त्ववेत्ताने ध्यानकी व्याख्या नीचे लिखे मुआफिक की है:—

"Meditation is the intense dwelling, in thought, upon an idea or a theme, with the object of thoroughly comprehending it, and whatsoever you constantly meditate upon, you will not only come to understand, but will grow more and more into its likeness, for it will be incorporated into your very being, become, in fact your very self. If therefore you constantly dwell upon that which is selfish and debasing, you will ultimately become selfish and debased, if you ceaselessly think upon that which is pure and unselfish you will surely become pure and unselfish."

" किसी भी वस्तुका सम्पूर्ण ज्ञान पानेके लिये उस वस्तुके विचारमें पूरे तोर पर मग्न हो जानेका नाम 'ध्यान' है। जिस किसी वस्तु या विषय पर बार बार विचार किया जाय या ध्याने जाय तो उस वस्तु वा विषयका ज्ञान ही नहीं होगा स्वयं तद्रूप होते जाओगे—तुम्ह उसका रूप बन जाओगे।

जो तुम्ह निरन्तर स्वार्थके विचार करते रहोगे और नीचताका ध्यान करोगे तो आखिर तुम्ह स्वार्थी और नीच बनोगे, और जो पवित्रता और निःस्वार्थपनका बार बार ध्यान करते रहोगे तो तुम्ह सचमुच पवित्र और निःस्वार्थी बनते जाओगे"।

शान्तिके समय जब तुम्हारी आत्मा अन्तर्मुख होती है उस समय तुम्ह कैसे विचारोंमें ध्यान लगाकर मग्न रहते हो? यदि मुझे कह बताओगे तो मैं तुम्हें बताऊंगा कि तुम्ह शान्तिकी ओर जाते हो या दुःखकी ओर, पवित्रताको बढाते हो या पशु भावको।

जो मनुष्य एक वस्तु या एक विषय परही विचार कर सकता है उसका वर्ताव वैसा ही हो जाता है। इस लिये ध्येय पदार्थ अधम न रखकर उच्चसे उच्च रखना चाहिए, और स्वार्थके साथही स्वार्थका अंश न मिलने देकर अपने विचार भी उच्चसे उच्च कोटिके रखना चाहिए। ऐसा करनेसे अन्तःकरण निर्मल होगा और परमतत्त्वकी ओर खिंचेगा, इतनाही नहीं भ्रमकी खाईमें वारवार पड़ते बचेगा भी।

आत्मिक जीवन और ज्ञानकी परम उन्नति सम्बन्धी ध्यान करनेका यह चित्र है. प्रत्येक पैगंबर, महात्मा, जीवन्मुक्त, जगदुद्धारक, इसी ध्यानकी शक्तिसे उच्च पद पागये हे। बुद्धने परमतत्त्वके ऊपर इतना ध्यान लगाया कि उनके मुखमेंसे यह वाक्य निकल पड़ा कि "मैं परमतत्त्व हूं"। ईसु ख्रिस्ट भी उस समयतक ध्यानमें लगा रहा कि जब तक उसने यह न कहा कि 'मैं और मेरे पिता एकही रूप हैं'। मुसलमान भक्त कवि मनसूरने अपने इश्कमें 'अनलहक' को—"मैं ही खुदा हूं" कि तान गाई। और वेदशास्त्रके ज्ञाताओंने 'अहं ब्रह्मास्मि' "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंका पाठ किया।

पवित्र भावना, पवित्र शान्ति, अमर कीर्ति और शुद्ध आनन्द नही खिलेंगे। इस समय यह सब उच्च भावनाऐं हमसे दूर २ जाती हैं; परन्तु ध्यानकी सहायतासे ये सब अपने वशमें आ जायगी। जेम्स एलन नामक अंग्रेजी तत्त्ववेत्ताने ध्यानकी व्याख्या नीचे लिखे मुआफिक की है:—

"Meditation is the intense dwelling, in thought, upon an idea or a theme, with the object of thoroughly comprehending it, and whatsoever you constantly meditate upon, you will not only come to understand, but will grow more and more into its likeness, for it will be incorporated into your very being, become, in fact your very self. If therefore you constantly dwell upon that which is selfish and debasing, you will ultimately become selfish and debased, if you ceaselessly think upon that which is pure and unselfish you will surely become pure and unselfish."

" किसी भी वस्तुका सम्पूर्ण ज्ञान पानेके लिये उस वस्तुके विचारमें पूरे तोर पर मग्न हो जानेका नाम 'ध्यान' है। जिस किसी वस्तु या विषय पर बार बार विचार किया जाय या ध्यान [illegible] — तो उस वस्तु या विषयका ज्ञान ही नहीं होगा [illegible] तद्रूप होते जाओगे–तुम्ह उसका रूप बन जाओगे।

श्री महावीरने ध्यानमग्न हो कर सिद्ध किया कि "अप्पा सो परमप्पा"।

पवित्र सत्य तत्वोंका ध्यान प्रार्थनाका जीवन है। यही ध्यान आत्माको परमात्माकी ओर लेजानेका मार्ग है। ध्यान विना की हुई प्रार्थना जीवरहित खोखेके समान है। ऐसी प्रार्थना मन और हृदयको निर्मल-पापरहित कर ऊंचे नहीं ले जा सकती। तुम्ह प्रतिदिन ज्ञान, शांति, शुद्धि और परम पदकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हो और वह चीज तुम्हसे फिर भी दूर रहती हो तो निश्चय समझो कि एक ओर तुम्ह तुम्हारे हृदयसे प्रार्थना करते हो और दूसरी ओर अपने बर्तावको औरही मार्ग पर ले जाते हो। जो तुम्ह ऐसे अनिश्चित पनको छोड दो, और अपने मनको स्वार्थी पनसे छुडा लो (जो तुम्हारी प्रार्थनामें विघ्न कर्ता है), जिस वस्तुके पाने योग्य तुम्ह न हुए हो उसे न चाहो, और सत्यमार्गका ही विचार करते रहो, तो तुम्ह उन्नतिक्रममें बढते ही जाओगे और अन्तमें परमात्माके साथ एकता कर सकोगे।

जो मनुष्य सांसारिक लाभ पाना चाहता है उसे भी हिम्मत के साथ उसीके पीछे लगा रहना होता है। जो वह मनुष्य दोनों हाथ जोड कर बैठा रहे और उसे पानेका कुछ भी प्रयास न करे तो सचमुच हम उसे मूर्खही कहेंगे। फिर प्रयत्न विना स्वर्गीय सुख तुम्हें अपने आप आ मिलेगा इसका स्वप्नमें भी विचार न करना। सत्य मार्ग पर जब तुम्ह दृढतासे चलना शुरू करोगे तभी तुम्ह जीवनमें सत्य जाननेके अधिकारी बनोगे। और जब तुम्ह यत्न करते २ आध्यात्मिक प्रसाद पाने योग्य हो जाओगे तब वह मिले विना न रहेगा।

जो तुम्ह वास्तवमें सत्यको ही ढूंढते हो, जो अपनी तृष्णा को नहीं संतुष्ट करना चाहते हो, जो तुम्ह दुनियाके सब सुखोंसे–सब लाभोंसे सत्यको उत्तम मानते हो और उसे ही चाहते हो, तो उसे पानेका भी तुम्ह प्रयत्न प्रसन्नतापूर्वक करोगे ही।

जो तुम्ह पाप और शोकसे मुक्त होना चाहते हो, जो निष्कलंक पवित्रताके लिये आंसू गिराते हो और जो प्रार्थना करते हो उस पवित्रताका स्वाद चखनेकी आकाक्षा हो, जो तुम्हें ज्ञान और अनुभव पाना हो और जो शान्तिके स्थलपर जाना हो, तो इसी समय–इसी समय ध्यानके मार्गमें दाखिल हो जाओ और अपने ध्यानका विषय रक्खो 'सत्य'।

'मनमानी फोकट कल्पना' और 'ध्यान'में क्या भेद है इस बात समझनेकी आवश्यकता है। ध्यान कुछ स्वप्नकासा खियाल नहीं है। या अव्यवहारिक बात नहीं है। यह तो सत्य खोजनेका उत्तमसे उत्तम मार्ग है। और जब तक पूर्ण सत्य न जान पड़े तब तक वह एकसाही नहीं है। जो तुम्ह इस तरह सत्यके उपासक बनोगे तो मतांधतामें न खिंचोगे, परन्तु ममत्व भाव भूल कर केवल सत्यके ही शोधक बनोगे। इससे तुम्हारे आसपास इकठी हुई और तुम्हारी पहिलेसेही पाली हुई सबकी सब भूलें दूर हो जांयगी और इसी मार्गपर चलते २ तुम्ह पूर्ण सत्यका प्रकाश पासकोगे। कवि ब्राउनिंगने लिखा है कि—

हम सबमें एक मध्यबिन्दु है, जहां पूर्ण सत्य [illegible] रहा है। उसके आसपास एकके बाद एक करके [illegible] हुए हैं। इनके कारण सत्यका प्रकाश ठीक [illegible]

नहीं पड सकता, उसे इन्द्रिये और शरीर भलीभांति नहीं प्रकाशित होने देते और इसी कारण सब भूलें होती हैं । इन भूलोंको दूर करनेके लिये बाहरसे प्रकाश नहीं लाना है परन्तु जो प्रकाश अपने अन्दर है उस प्रकाशका आवरण दूर करनेमें ही सच्चा पुरुपार्थ समाया है । जो तुम्ह इस पुरुपार्थका आचरण करो तो जीवनका उद्देश सफल हो जायगा ।

ध्यानके लिये दिनका ठीक समय मुकरर करना चाहिए और उसे अपने हेतुके लिये पवित्र गिनना चाहिए। जब प्रकृतिमे सर्वत्र शांति फैली हुई होती है ऐसा प्रातःकालका समय सारे दिनमें उत्तम समय है । प्रकृतिकी स्थिति भी उस समय विशेष सहायक होती है । तृष्णा और फीलिंग्स भी गई रातकी गाढ निद्राके बाद तावे हो सकती है । गये दिनकी चलविचलता और थाक नष्ट हो जानेसे मन शान्त होता है और आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने योग्य होता है । ऐसे समयमें पहला प्रयत्न तुम्हारे करनेका यही है कि अपनी सुस्ती और आलस्यको दूर कर देना । जो आलस्य की ओर दुर्लक्ष्य किया जायगा तो कभी आगे पैर न बढाया जायगा। क्योंकि आत्माकी ख्वाहिशें आज्ञावाचक (Imperative) हैं ।

आध्यात्मिक जागृतिही मानसिक और शारीरिक जागृति है। इससे सुस्त और विषय भोगमें लिप्त मनुष्योंको सतका भान क्या होता ही नही है । तन्दुरुस्त–आरोग्यवान् मनुष्य जो प्रा- का इस शान्त समयको गाढ निद्रामें या भोग विलासमें हैं वे स्वर्गकी निसरनीपर चढनेके सर्वथा नालायक हैं ।

जिसका स्वैतन्य इस उच्च स्थानका अनुभव पानेके लिये जागृत हो गया है और जिसने जड़ पदार्थी बन्धकारक ध्वंस करनेका प्रारम्भ किया है वह तो तारामंडलके ऊपर तक होतेही चल जाते हैं और अपने अन्तरात्माके साथ पवित्र और महती इच्छासे परम तत्वका प्रकाश देखनेको छूट जाते है, जिस समय सजागृत दुनिया घोर निद्रामें खुर्राटे लेती रहती है।

महापुरुष जो ऊंचे स्थानपर चढ़े हैं और वहां स्थित हो रहे हैं वे कुछ एक ही छलांग मार कर नहीं चढ़ गये हैं परन्तु जब उनके साथी घोर निद्रामें पड़े थे उस समय वे उच्च स्थानपर पहुंचनेको अपना रास्ता काटते रहे थे।

ऐसा एक भी महात्मा या एक भी पवित्र पुरुष भारतका उपदेशक नहीं हुआ जो प्रातःकालमें उठे बिना रहा हो। ईसु क्रिस्ट हमेशा प्रातःकालमें उठकर एकान्त पर्वतपर अपना ऐक्य साधन करते थे, बुद्ध सूर्योदयसे एक घंटा पहले उठकर ध्यानमें मग्न रहते थे और अपने सब शिष्योंको भी ऐसाही करनेकी आज्ञा देते थे। तीर्थंकरोंको पर्वत पर ध्यान-समाधि-कायोत्सर्ग करनेका निरन्तर शौक था यह सब कोई जानते हैं।

प्रातःकालके ऐसे उत्तम समयमें जो कदाचित् उन्हें संसार व्यवहारके संबन्धरूप कामोंके पलानेकी फुर्सत न पड़े और ऐसे सुन्दर ध्यान साधनमें अन्तराय-विघ्न आ पड़ता हो
एक घंटा उन्हें इस काममें लगाना चाहिए। और
दिन भर वे कामोंकी खटपटके कारण ऐसा भी

गौतम बुद्धने अपने शिष्य मंडलको नीचे लिखे हुए पांच महान् प्रकारोंका ध्यान करनेका उपदेश दिया था—

(१) प्रेम भावना—जिसमें अन्तःकरण पूर्वक प्राणीमात्रका भला चाहनेकी इच्छा करना, यही नहीं परन्तु, शत्रुके लिये भी सुखकी भावना करनेका समावेश होता है।

(२) दया—जिसमें प्राणी मात्रके दुःखोंका विचार कर अपने संकल्पमें उनके शोक व आशाओंका चित्र खींचकर उनकी ओर करुणा करनेका समावेश होता है।

(३) आनन्द—जिसमें पराये सुखमें अपने सुखके अनुभव करनेका समावेश होता है।

(४) स्वच्छता—जिसमें अनाचार व अनीतिका दुःखदायक परिणामोंका विचार और उसमें उत्पन्न होते हुए पाप और दुःखका असर, तथा पापसे मिलते सुखकी क्षणभंगुरता और नाशकारक आदिका समावेश होता है।

गौतम बुद्धने अपने शिष्य मंडलको नीचे लिखे हुए पांच महान प्रकारोंका ध्यान करनेका उपदेश दिया था—

(१) प्रेम भावना.—जिसमें अन्त करण पूर्वक प्राणीमात्रका भला चाहनेकी इच्छा करना, यही नहीं परन्तु, शत्रुके लिये भी सुखकी भावना करनेका समावेश होता है।

(२) दया.—जिसमें प्राणी मात्रके दुखोंका विचार कर अपने मनमें उनके शोक व आशाओंका चित्र खींचकर उनकी ओर करुणा करनेका समावेश होता है।

(३) आनन्द.—जिसमें पराये सुखमें अपने सुखके अनुभव करनेका समावेश होता है।

(४) अपवित्रता:—जिसमें अनाचार व अनीतिका दुःखदायक परिणामोंका विचार और उससे उत्पन्न होते हुए पाप और दुःखका असर, तथा पापसे मिलते सुखकी क्षणभंगुरता और नाशकारक आदिका समावेश होता है।

इस प्रकारके ध्यानमें मग्न रहनेसे बुद्धके शिष्य मंडलको सत् के ज्ञानका भान हुआ था। जब तक तुम्हारा हेतु सत् है, जबतक तुम्हारी आशा--तृष्णा पवित्र अन्त करण और शुद्ध जीवनवाली है, तब तक तुम्ह ऐसा ध्यान करो या न करो कोई बात नहीं, वह एकही बात है। तुम्हारे ध्यानको, तुम्हारे अंत करणको प्रेमरुपी झरेसे विकसित होने दो और धिक्कारकी वृत्तिसे तथा तुच्छतासे अपने मनको छुड़ा लो। दुनियामें जैसे पुष्प प्रात:कालमें खिलनेके लिये किरण ग्रहण करनेको पंखडियां उघाडते हैं वैसेही तुम्हारे जीवात्माको खोलकर उसमें सत्के तेजस्वी प्रकाशीत किरणोंको खूब आने दो।

उच्च भावना रुपी पांखोंसे आनन्द स्वर्गमें उडो; निडर हो; 'बडी शक्तियां मिलसकती है' ऐसा मानो; 'बिल्कुल शांत और ...क जीवन व्यतीत हो सकता है' इसमें संदेह न करो; और ...चा सत्य मिलसकता है' इसपर श्रद्धा रक्खो. ऐसी श्रद्धा ... मनुष्य बडे वेगसे स्वर्गकी ओर जाते हैं और जिनमें ऐसी ... होती वे वहममें ही भ्रमण करते रहतेहैं और दुःख ... हैं।

को सूर्य मनुष्यकी आंख नहीं भेद सकती परन्तु सत्यकी आंखसे तो यह बिल्कुल पारदर्शक होजाता है। ऐसा होनेपर वह तुम्हारी आंखोंके सामनेसे दूर हट जायगा और तुम्हें आत्मिक विश्वके दर्शन होंगे। ऐसी हालतमें समयका पता भी न रहेगा और तुम्ह आदिअंतहीन स्थितिका अनुभव करोगे। स्थितिओंका फेरफार और मृत्यु तुम्हें चिंता न पहुंचा सकेगी क्योंकि उस समयकी स्थिति अचल, अमर, अव्याबाध होती है।

प्रथम खंड समाप्त.

वा. मो. शाहने प्रसिद्ध किये हुवे ग्रंथों.

(देवनागरी लिपिमें)

(१)	संसारमें सुख कहां है ? प्रथम खंड.	०—४—०
(२)	संसारमें सुख कहां है ? दुसरा खंड.	०—४—०
(३)	स्वरशास्त्र (गुप्त विद्या)	०—४—०
(४)	धर्मतत्व संग्रह.	०—८—०
(५)	सप्त रत्नों.	०—४—०
(६)	नमीराज.	०—४—०
(७)	सच्चे सुखकी कुंजियां.	०—४—०
(८)	जैन इतिहास.	०—८—०
(९)	कल्याण मंदीर स्तोत्र.	०—२—०
(१०)	धर्मसिंह—बावनी.	०—४—०